http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

मोक्ष – शास्त्र

भाग 24

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी “सहजानन्द” महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

मोक्ष-शास्त्र

आध्यात्म योगी पूज्य गुरुवर श्री मनोहर जी वर्णी
सहजानन्द जी महाराज

श्री सहजानन्द शास्त्र माला 13, से 14 भाग
१८५-ए, रणजीतपुरी, सदर - मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकाशकीय

धर्मप्रेमी बन्धुओ !

श्रीमदुमास्वामी द्वारा प्रणीत 'मोक्ष शास्त्र' जैन धर्म व जिनशासन का प्राण है। प्रणेता ने छोटे छोटे सूत्रों में गागर में सागर भर दिया है। इस पर आठ दस शताब्दी पूर्व श्रीमद्भट्टाकलंकदेव, श्रीमत्विद्यानन्दि स्वामी जसे दिग्गजों ने टीकाएँ की हैं। परन्तु टीकाएँ संस्कृत में होने के कारण जनसामान्य के उपयोग में नहीं आतीं।

यह समाज के परमहित व उपकार की बात है कि पूज्य गुरुवर्य्य श्री सहजानन्द जी महाराज ने इस ग्रन्थ पर प्रवचन किये हैं। धर्म के मर्म को महाराज श्री ने किस प्रकार उजागर किया है, यह तो ग्रन्थ के अध्ययन से ही पता लगता है।

जिज्ञासु बन्धुओं से निवेदन है कि इस प्रवचन में संजोये रत्नों का लाभ उठायें जिससे मोक्ष मार्ग में प्रगति हो और सत्य सहज आनन्द प्राप्त हो।

मंगलाकांक्षी
मंत्री
सहजानन्द शास्त्रमाला
मेरठ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ॐ

मोक्ष शास्त्र प्रवचन

चौबीसवां भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥ १०—१ ॥

मोक्ष के वर्णन के प्रसंग में प्रथम ही केवल ज्ञान के वर्णन का कारण—९वें अध्याय में संवर और निर्जरा का वर्णन किया गया । अब मोक्ष का वर्णन किया जाना चाहिये । सो मोक्ष चूँकि केवलज्ञान न पाये तब तक नहीं हो सकता। इस कारण पहले केवलज्ञान की ही बात कह रहे हैं। मोह का क्षय होने से और ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय का क्षय होने से केवल अवस्था प्राप्त होती है। इस तत्त्वार्थ सूत्र में सर्वप्रथम सूत्र था—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः। याने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र यह मोक्ष का मार्ग है। इस विषय में अनेक वर्णन हो चुके। अब जिसका यह मार्ग है उस मोक्ष के विषय में वर्णन चल रहा है। यहाँ कोई ऐसा सोच सकता है कि मोक्ष का वर्णन तो पहले ही कहना चाहिए था जिससे यह जाहिर होता कि इसका मार्ग बताया जा रहा। सो पहले यों वर्णन नहीं किया कि मोक्ष तो सभी मानते हैं पर कोई किसी ढंग से कोई किसी ढंग से। मगर सब मत वालों को मोक्ष स्वीकार है कि मोक्ष होना चाहिए, सो मोक्ष के सम्बन्ध में विवाद किसी को न था, पर मोक्ष के उपायों में, सम्बन्ध में विवाद चल रहा था, इसलिए मार्ग का वर्णन किया। अब उस मोक्ष मार्ग में सम्यग्दर्शन आया और सम्यग्दर्शन के प्रसंग में ७ तत्त्वों का वर्णन चला, उस वर्णन से सम्बन्धित होने से निर्जरा के बाद अब यहाँ मोक्ष का वर्णन कर रहे हैं।

सूत्र में मोहक्षयात् पृथक पद देने व पश्चात् तीन घातिया कर्मों का सूत्र बताने का प्रयोजन—यहाँ एक शंका होती है कि सूत्र में चार कर्मों के क्षय की बात कही गई है सो तो ठीक है मगर मोह का क्षय होने से यह अलग क्यों कहा ? चारों का नाम लेकर क्षय कह देते और ऐसा कहने से सूत्र भी छोटा बन जाता, क्योंकि क्षय को दो बार नहीं कहना पड़ता। इसके समाधान में कहते हैं कि बात तो ठीक है, चारों के क्षय से केवल ज्ञान होता है, पर यहाँ क्षय का क्रम बतलाते थे कि सबसे पहले मोह का क्षय होता है, पश्चात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय का क्षय होता है। मोह दो प्रकार के हैं—(१) दर्शनमोह और (२) चारित्रमोह। तो दर्शनमोह का क्षय तो चौथे गुणस्थान से लेकर ७वें गुणस्थान तक किसी भी जगह हो सकता है और चारित्रमोह का क्षय ७वें गुणस्थान से ऊपर प्रारम्भ होता है, कुछ ९वें में क्षय होता, कुछ १२वें में क्षय हो जाता। १०वें गुणस्थान के अन्त तक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समस्त मोह का क्षप हो जाता है, उसके पश्चात् १२वाँ गुणस्थान मिला सो १२वें गुणस्थान के अन्त में बचे हुये ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का क्षय हो जाता है। यह क्रम बताने के लिये मोहक्षयाज् यह पद अलग दिया है और ज्ञानादिक का पद अलग दिया है। यहाँ पंचमी विभक्ति का प्रयोग किया गया जिससे यह जाहिर होता कि केवल ज्ञान की उत्पत्ति का हेतु चार घातिया कर्म का क्षय है। एक बार केवलज्ञान हुए बाद फिर केवल ज्ञान चलता ही रहेगा। फिर निमित्त नहीं है अर्थात प्रथम-प्रथम जब केवलज्ञान उत्पन्न हुआ तो वहाँ चार घातिया कर्मों के विनाश का निमित्त जाकर हुआ। मोहादिक प्रकृतियों का क्षय कैसे होता है? तो उनके क्षय का कारण है परिणाम की विशुद्धि।

आत्मविकास का प्रारम्भ और आत्मविकास की पूर्णता—कुछ थोड़ा भी आत्मा को अवसर मिले, कुछ ज्ञान बढ़े, कुछ उपदेश मिलें, कुछ चिन्तन चला कि तत्त्व मनन किया तो इस पुरुषार्थ से तो उन ७ प्रकृतियों में ढिलाई आ जाती है। और ऐसी विशुद्धि होते-होते जब करणलब्धि मिलती है तो उस विशुद्धि से इन ७ का क्षय हुआ और क्षय होते ही सम्यग्दर्शन हुआ। सो सबसे पहले जीव को जिसको कभी भी सम्यक्त्व नहीं हुआ, प्रथमोपशम सम्यक्त्व हुआ। अब इस विधि से सुनें कि वह जल्दी से जल्दी निर्वाण मिले तो किस तरह प्रगति होती है? प्रथमोपशम सम्यक्त्व के बाद क्षायोपशमिक सम्यक्त्व हुआ। प्रथमोपशम सम्यक्त्व से पहले ५ प्रकृतियां थीं दर्शनमोह की एक मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी कषाय की चार, पर जैसे ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व हुआ तो मिथ्यात्व के तीन टुकड़े हो जाते तब ७ प्रकृतियों की सत्ता हो जाती। दबी हैं वे सब, मगर सत्ता है उनकी। तो उनमें से अनन्तानुबंधी ४, मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व उनका तो हो जाये उदयाभावी क्षय याने उदय से एक समय पहले अन्य प्रकृति रूप बदलकर खिरते जाना और इन ६ का जो कभी आगे उदय में आ सकेंगे उनका हो जाये उपशम अर्थात वे कहीं उदीरणा में न आ जायें ऐसे क्षय और उपशम होनेपर और सम्यक् प्रकृति का उदय होने पर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है। फिर यह क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि ७ प्रकृतियों का क्षय कर दे तो इसके क्षायिक सम्यक्त्व हो जाता है। यह यदि उपशम श्रेणि से चढ़ेगा तब तो एक बार वीतराग होकर भी गिर जायेगा और क्षपक श्रेणी से चढ़ेगा तो वह गिरेगा नहीं। चारित्रमोह का क्षय करता हुआ वह १०वें में समस्त चारित्रमोह से रहित हो जाता है अन्त में। और उसके बाद १२वाँ गुणस्थान पाकर अन्त में तीन कर्मों का नाश करके केवलज्ञानी हो जाता है। इस चारित्रमोह के नष्ट होने की विधि यह है कि जब यह ९वें गुणस्थान में पहुँचा तो वहाँ नपुंसक वेद, स्त्रीवेद याने नोकषाय और अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण दोनों के क्रोध को, मान को और माया को नष्ट करता है। सो यह नोकषाय को तो पुरुषवेद रूप बना डालता पुरुष वेद को संज्वलन क्रोध रूप बना डालता, संज्वलन क्रोध को मान रूप बनाता और सज्वलन मान को माया रूप से बनाता और फिर उन सबको नष्ट कर देता है, तब यह १०वें गुणस्थान में पहुँचता है और वहाँ लोभ कषाय को भी नष्ट कर देता है। तो यों १२वें गुणस्थान में जाकर शेष घातिया कर्मों का विनाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है। उस केवल ज्ञान में त्रिकालवर्ती सर्व द्रव्य पर्यायें झलकती रहती हैं। अब ये शरीर सहित परमात्मा कहलाते हैं इस सशरीर परमात्मा के जब शेष बचे अघातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं तब उनका मोक्ष कहलाता है। इस समस्त मोक्ष की

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रक्रिया में करने का उपाय एक ही है कि अपना जो सहज चैतन्य स्वरूप है उसमें यह मैं हूँ ऐसा अनुभव करना, अन्य रूप अनुभव न करना।

सकटों की मूल करतूत—भैया ! रागद्वेष मोह जो सताते हैं और जो बाह्य पदार्थों से लगाव बनता है उस सबका कारण यह है कि यह अपने चैतन्य स्वरूप को मैं नहीं मान पा रहा है और पर्याय को, शरीर को इनमें ही मैं मानता है देखिये—जिसको अपनी नामवरीका बड़ा ख्याल है, मेरा नाम चले, फैले तो समझिये कि उसके मिथ्यात्व का उदय है। जब देह को माना कि यह मैं हूँ तब देह के नाते से अब यह नाम चाहिये फोटो क्या आत्मा की उतारी जायेगी ? अरे फोटो तो इस शरीर की उतरती है। नाम क्या आत्मा का कोई लिखवाता है ? अब कमरा बनवाकर क्या कोई यह कहता है कि इसमें लिख दो कि यह कमरा चैतन्य स्वरूप ने बनवाया ? हाँ किसी का नाम ही अगर चैतन्य स्वरूप हो तो भले ही लिखवायेगा मगर वह देह के नाम के कारण लिखवायेगा, और फिर चैतन्य स्वरूप कमरा बनवाता ही नहीं। वह तो सहज अविकार शुद्ध चैतन्य स्वभाव मात्र है। जिसने जाना कि यह मैं हूँ, ऐसा श्रद्धान बन जाए तो उसको चेष्टा नामवरी की नहीं हो सकती। तो जिसको अपने आपके स्वरूप की सुध है वही धर्म मार्ग में लगेगा, पर्याय बुद्धि वाला धर्म मार्ग में नहीं है। धर्म मार्ग में लगे हुये मुनि के कर्म स्वतः नष्ट हो जाते हैं। कर्म को देखकर, सोचकर नाश नहीं किया जा सकता। तो अपने स्वरूप की सुध रहे और उसी में दृष्टि बनाये रहें तो स्वयं ही कर्म अपना बल समाप्त कर देते हैं और कर्म दूर हो जाते हैं। तब चारों तरफ कुछ नहीं निरखना। यहां तक कि अपने शरीर की चेष्टा भी नहीं निरखना है, किन्तु अन्दर में अपने चैतन्य स्वरूप में यह मैं हूँ इस प्रकार का अनुभव करना है। तो जिस प्रकार भी प्रगति होगी वह हो जायेगी। जो जीव ऐसा पौरुष करते हैं उनको बंधी हुई कर्म प्रकृतियों में स्थिति क्षीण होगी, अनुभाग क्षीण होता है याने फल देने की शक्ति कमजोर हो जाती है। तो इस प्रकार निर्जरा होकर उन कर्मों का पूर्ण अभाव हो जाता है।

ज्ञानानुराग की महिमा—यह जीव इस समय बड़े बंधन में है, पर बंधन को निरखने से कार्य न बनेगा। जो स्वयं है आत्मा का सहज स्वरूप उसमें आपा अनुभव करने से इस जीव की प्रगति बन सकेगी। सो सबसे पहले इस जीव के मोह का क्षय हो जाता है। पश्चात् ३ घातिया कर्मों का क्षय होता है और इसके केवलज्ञान हो जाता। इस केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए ज्ञानस्वरूप में उमंग होनी चाहिए और सम्यग्ज्ञान के साधनों में भक्ति होनी चाहिए। जो ज्ञान में अनुराग रखता है, बढ़ाता है, शास्त्रों का प्रचार करता है ये सब केवलज्ञान के बीज होते हैं। अन्य-अन्य प्रकार के दान थोड़ा-थोड़ा भी सुगति देंगे, धन लाभ होगा, लोक में इज्जत बनेगी, पर ज्ञानदान, ज्ञान के प्रति भक्ति यह केवल ज्ञान का बीज होता है और इसी कारण ४ दानों में ज्ञान दान को प्रधान कहा है और आचार्यों ने युक्ति पूर्वक बताया कि आहार दान से तो २४ घण्टे में पात्र को सुख शान्ति पहुँचेगी, औषधि दान देने से कुछ महीने आराम से रहेगा, अभयदान देने से उसी दिन उन समयों में उसको निर्भयता हो जाएगी, पर ज्ञानदान से अगर वह ज्ञान प्रकाश पा लेता है तो अनन्त काल तक संसार के संकटों से छूट जाए, ऐसी स्थिति पास है तो वह केवल ज्ञान की प्राप्ति करता है। केवलज्ञान ही उपादेय है। वही आत्मा का स्वाभाविक रूप है। ऐसा निरखकर एक ज्ञान के प्रति भक्ति उमड़ना, यही एक कल्याण का उपाय है। अब केवलज्ञान हुए बाद इस जीव की कैसी स्थिति होती है, किस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकार मोक्ष होता है, अथवा सामान्यतया मोक्ष का क्या उपाय और स्वरूप है, यह बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ १०-२ ॥

मोक्ष की उपेयता व संवर निर्जरा की उपायरूपता—इस सूत्र में मोक्ष का लक्षण बताया है कि बंध के कारणों का अभाव होना और निर्जरा होना इन दो उपायों द्वारा समस्त कर्मों से छुटकारा होने को मोक्ष कहते हैं। बंध के कारण बताये गए थे ८वें अध्याय में, मिथ्यादर्शन, अविरति प्रमाद, कषाय और योग, इनका अभाव होने से सम्वर होता है। जैसे मिथ्यात्व का अभाव होने से मिथ्यात्व जनित कर्म प्रकृतियों का सम्वर हो जाता है ऐसे ही अविरति आदिक के अभाव से कर्म का सम्वर होता है, क्योंकि कारण के अभाव से कर्म का अभाव होता ही है। सो आश्रवद्वार जब बंद हो गया तो कर्म का सम्वर होता है और सम्वर पूर्वक निर्जरा होने से मोक्ष होता है। निर्जरा के कारण बने तो पहले से इकट्ठे हुये कर्मों का विनाश हो जाता है। सो ऐसा विनाश होते-होते केवल ज्ञान होने के पश्चात् शेष तीन अघातिया कर्मों को आयु के बराबर होने के पश्चात् जब सब कर्मों का विनाश होता है, १४वें गुणस्थान में इनका विनाश है उसके बाद निर्वाण हो जाता है।

मिथ्यात्व के परिहार की अतीव आवश्यकता—बंध के कारणों में पहला कारण बताया है मिथ्यादर्शन। पदार्थों का स्वरूप तो है अन्य भाँति और यह श्रद्धान कर रहा अन्य भाँति तो यह मिथ्यात्व है। जैसे देव का स्वरूप तो है रागद्वेषरहित परिपूर्ण ज्ञानमय पर उस देव को कोई अन्य-अन्य रूपों में माने जैसे कि यह मुझे सुख देगा, दुःख देगा, स्वर्ग भेजेगा, नरक भेजेगा आदि तो इस प्रकार का उलटा श्रद्धान करना मिथ्यादर्शन है। जो साधु कुटी बनाकर, भस्म रमाकर, जटायें रखकर त्रिशूल लेकर या कोई भी बाहरी रूप रखकर मान ले कि इससे कर्मों की निर्जरा होती है ऐसे गुरुओं को जो गुरु मानकर पूजे वह भी मिथ्यादर्शन है जो आरम्भ परिग्रह रहित ज्ञान ध्यान में लवलीन साधुओं को गुरु माने वह सम्यक्त्व है। तो जो वस्तु जिस प्रकार यहीं है उसका उस रूप में श्रद्धान करना यह मिथ्यादर्शन है। आत्मा का स्वरूप चैतन्यमात्र है। अन्य समस्त जोवों से पौद्गलिक पदार्थों से जुदा है, पर ऐसा न मानकर कर्म के सम्बन्ध से हुई उन पर्यायों को आत्मा माने तो वह मिथ्यात्व है, मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ, गरीब हूँ, धनी हूँ आदिक अनेक रूपों में जो अपने को मानता है वह मिथ्यात्व है।

असार संसार में सम्यक्त्व लाभ की साररूपता—एक सम्यक्त्व हो तो उससे अवश्य पार हो पायेंगे, सम्यक्त्व बिना अनेक तपश्चरण कर लिए जायें पर उनसे पार नहीं हो सकते। सम्यग्दर्शन होने पर सब जगह एक ज्ञान सामान्य स्वरूप में नजर आता है और भले संसारी जीवों की अनेक तरह की चेष्टायें होती हैं, पर यह ज्ञान उन चेष्टाओं में न अटक कर सम्यग्दृष्टि स्वरूप को ही निरखता है। जीव का सच्चा साथी धर्म है, और धर्म है आत्मा के स्वरूप को निरखना। सो जो मनुष्य अपने आप में आत्मस्वरूप को निरखेगा। उसके कर्म ध्वस्त होंगे, इसलिए एक ही कर्त्तव्य है कि अपने को ऐसा अनुभवे कि मैं ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व हूँ अन्य रूप नहीं हूँ। यह शरीर जिससे राग है, जिसमें हम प्रीति रखते और विषयों का सेवन करते, पालनकरते, यह शरीर तो एक दिन इन्हीं मित्रों के द्वारा श्मशान में ले जाकर जला दिया जायेगा। एक चेतन के निकलने पर इस शरीर का कुछ भी महत्त्व नहीं रहता। ऐसे शरीर से क्या प्रीति करना? ज्ञान मात्र अन्तः स्वरूप की महिमा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जानना कि मेरा यह आत्मा अकेला यदि प्रकट हो जाये, इन कर्म बन्धनों से यदि हट जाये तो यह अलौकिक आनन्द का स्वामी बन जाये। जो मोह में नहीं भटकता, अपने आत्मस्वरूप का कर्तव्य निभाता वह पुरुष संसार से पार होगा और जो बीच में ही अटक गया, वहाँ ही अपना हित मान रहा वह पुरुष संसार में भटकेगा। उसे आत्म वैभव कुछ न मिलेगा। मुफ्त में दुर्गति और बांध ली। इस थोड़े से मनुष्य जीवन में यदि विवेक से काम लिया जाता तो छूटना तो आवश्यक था ही, छूट रहे हैं, मगर विवेक बल से मोह कम कर लिया जावे और आत्मस्वरूप के ध्यान में लग जावे तो वह पार हो सकता। पर ऐसा कर्म सता रहे हैं इस जीव को कि धर्म के मार्ग में बढ़ने की इसे उमंग नहीं होती। तो जो जैसा करेगा वैसा भरेगा। अपनी अपनी बात को विचारो कि मुझको आगे खोटा भोग न भोगना पड़े, पवित्र रहें, शान्ति में रहें। तो मेरा यह कर्तव्य है कि इस जीवन में अपने आत्मा का सहज स्वरूप निरखने में ही सारा समय लगे। जैसे जैसे स्वानुभव की ओर बढ़ते जायेंगे वैसे ही वैसे अपने आप में अमूर्त ज्ञानस्वरूप का अनुभव चलेगा। शान्ति भी बढ़ती चली जायेगी। इससे शान्ति के लिये एक ही काम है कि हम अपने स्वाभाविक सहज चैतन्यस्वरूप को ही यह मैं हूं ऐसा अनुभव बनायें, बाहर की चीजों के कर्ता भोक्ता न बनें। मैं तो केवल एक ज्ञान द्वारा जाननहार प्रकाशरूप रहा करता हूँ। इस प्रकार की प्रतीति और निर्णय इस जीव को संसार के संकटों से छुटा सकतो है। बस वही मोक्ष है। उस ही मोक्ष के स्वरूप का यहाँ निर्णय चलेगा।

अनादि होने पर भी कर्मबन्ध संतति का अन्त—यहाँ एक जिज्ञासु शंका करता है कि कर्मबन्ध की सन्तति जब अनादि से है तो उसका कभी अन्त न आना चाहिये। जो अनादि है उसका अन्त कैसे हो जाता है? समाधान—अनादि भी अन्त को प्राप्त हो जाता है। जैसे बीज और अंकुर की संतान अनादि है, जो आज वृक्ष खड़ा है वह बीज से हुआ है, वह बीज वृक्ष से हुआ है, वह वृक्ष बीज से हुआ है। यों यह संतति अनादि से है तो भी कोई बीज को जला दे तो वह संतति खतम हो हो गई ना? तो इसी तरह मिथ्या दर्शन आदिक जो बचे हैं उनको जला देने पर अथवा ध्यानाग्नि से कर्म बीज को जला देने पर विकार और कर्म बन्ध इनकी सन्तति मिट जाती है। यद्यपि यह सन्तति अनादि से चली आई है तो भी यह समाप्त हो जाती है और संतति समाप्त हुई कि जीव अपने असली स्वरूप में आ गया और इस ही को मोक्ष कहते हैं। तो जैसे बीज के जलने पर अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता इसी तरह कर्मबीज के जल जाने पर संसार रूपी अंकुर उत्पन्न नहीं होता। यहाँ दूसरे पद में बताया है कि समस्त कर्मों का छुट जाना मोक्ष है। सो उसका भाव यह है कि कर्म रूप से बँधी हुई कार्माणवर्गणायें हैं। उन कार्माण वर्गणाओं में से कर्मत्व का हट जाना, कर्मरूप से क्षय हो जाना यह यह ही कर्म का क्षय है। कहीं उन कार्माणवर्गणाओं का, पुद्गल का क्षय नहीं हुआ, किन्तु उनमें कर्मरूपता नहीं रहती। जो भी द्रव्य है उसका द्रव्य रूप से कभी भी विनाश नहीं होता। पर्यायें उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती हैं। तो कर्मों में भी कर्म पर्याय रूप से विनाश की बात समझियेगा। कहीं कर्मरूप हुए पुद्गल का द्रव्य का विनाश नहीं होता। तो पुद्गल द्रव्य का जो कर्म पर्याय है वह कैसे नष्ट होता? यों नष्ट होता कि उस कर्म पर्याय का प्रतिपक्षी विरोधी कारण है संवर और निर्जरा। संवर और निर्जरा के उपायों से पौद्गलिक कार्माणवर्गणाओं में कर्मत्व नहीं रहता। उस समय वह पुद्गल द्रव्य अकर्मपर्याय रूप से परिणत हो जाता है। जब तक कर्मपर्याय रूप से परिणत हो रहा था तब तक संसार था। और जब अकर्म पर्यायरूप से रह गया तो मोक्ष हो गया।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मोक्षण में मोच्य मोचक तत्त्व तथा प्रकृति मोक्षण की यत्न साध्यता व अयत्नसाध्यता का निर्देशन—यहाँ मोक्ष शब्द भावसाधन में प्रयुक्त हुआ है, जिसकी निरुक्ति है—मोक्षणं मोक्षः, छूट जाने को मोक्ष कहते हैं। तो यह मोक्ष शब्द दो पर दृष्टि दिलाता है। (१) मोक्तव्य और (२) मोचक याने जो छूटने योग्य है उसे कहते हैं मोक्तव्य अथवा मोच्य और जो छुटाने वाला है उसे कहते हैं मोचक, क्योंकि वियोग दो का होता है ना ? जब दो का वियोग होता तो उसमें एक को मोच्य कहियेगा और एक को मोचक कहियेगा। यहाँ जो कृत्स्न शब्द दिया है उससे आगे कर्म का ग्रहण करना। कृत्स्न मायने सब। कैसे वे सब कर्म ? जो सत्ता बंध उदय और उदीरणा रूप से चार भागों में बंटे हुए हैं। सो इन समस्त कर्मों का अभाव होने से छुटकारा होने से मोक्ष होता है। कर्मों का अभाव दो प्रकार से होता है। (१) यत्नसाध्य और (२) अयत्नसाध्य। एक तो विशुद्ध भाव रूप पुरुषार्थ के बल से कर्म प्रकृतियाँ दूर होती हैं और कोई कर्म प्रकृतियां बिना यत्न किये दूर होती हैं। जैसे कि जिस आत्मा को उसी भव से मोक्ष जाना है तो उस चरम शरीरी के नरकायु, तिर्यंचायु और देवायु का जो अभाव है वह अयत्नसाध्य है। इसके लिए कोई यत्न तो नहीं किया गया। उनकी सत्ता है ही नहीं। तो इनका स्वयं अभाव है और यत्नसाध्य क्या कहलाता है कि विशुद्ध परिणामों के होने से कर्म प्रकृतियों का संवर और संवर पूर्वक निर्जरण हो जाता है। वह यत्नसाध्य कर्मविनाश है।

यत्नसाध्य कर्मनिर्जरण का उदाहरण— अविरत सम्यग्दृष्टि अथवा अविरत सम्यग्दृष्टि से लेकर ७वें गुणस्थान तक किसी भी जीव के अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति इन ७ प्रकृतियों का विनाश हो जाता है। जैसे कि विष वृक्षों का वन तीक्ष्ण कुल्हाड़ी से समूल काट दिया जाता है ऐसे ही शुभ अध्यवसायरूप तीक्ष्ण परिणामों से ये ७ प्रकृतियां समूल नष्ट कर दी जाती हैं। यह हुआ यत्न साध्य प्रकृतियों का अभाव। ऐसे ही अनिवृत्तिकरण गुणस्थान वाले जीव एक साथ ही अपने समाधि चक्र से जिन प्रकृतियों को जीतता है और समूल नष्ट कर देता है वे प्रकृतियाँ ये हैं—निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, नरकगति, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण इन सब प्रकृतियों के समूल नष्टहोने से यही ९वें गुणस्थान वाला भव्य प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण सम्बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन ८ प्रकृतियों का समूल नाश कर देता है और इस ही गुण स्थान में नपुंसक वेद, स्त्रीवेद और ६ नोकषाय का क्रम से क्षय कर देता है। इसके बाद पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, और माया इस क्रम से विनाश कर देता है। इन प्रकृतियों का जो अभाव दिया है वह यत्नसाध्य अभाव कहलाता है। कोई पुरुषार्थ किया, परिणाम बढ़े, निर्मल हुए, इन प्रकृतियों का विनाश हुआ। १०वें गुण स्थान के अन्त में संज्वलन लोभ नाश को प्राप्त होता है। क्षीण कषाय वीतराग छद्मस्थ के उपांत समय में निद्रा और प्रचला नष्ट हो जाते हैं। और अन्त समय में ५ ज्ञानावरण ४ दर्शनावरण और ५ अन्तराय ? प्रकृतियों का विनाश हो जाता है। यह सब नाश, कर्मों का अभाव यत्न साध्य है। जिस जीव को मोक्ष जाना है उसके मनुष्यायु के सिवाय कोई आयु होती ही नहीं है। किसी भी जीव के अधिक से अधिक एक समय में दो आयु सम्भव हैं—(१) एक भोगने वाली आयु और (२) दूसरी वह आयु जिससे अगले भव में पैदा होगा, पर अरहन्त जो बनेगा उस मुनि के जन्म का तो सवाल ही नहीं है सिर्फ जो आयु भोगी जा रही वही भर है। सो वह तीन आयु का

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विनाश अयत्नसाध्य कहलाता है। पर इन सब प्रकृतियों का अभाव यत्नसाध्य है। इतनी प्रकृतियों का विनाश होने पर यह जीव केवल ज्ञानी परमात्मा हो जाता है।

सकल परमात्मा के कर्म निर्जरण का प्रतिपादन—अब १३वें गुणस्थान में तो किसी भी प्रकृति का विनाश नहीं है। अघातिया ही कर्म रह गये हैं। अब तो उनका नाश मोक्ष हो जाते समय होगा सो यह जीव अयोगकेवली गुणस्थान में पहुँचकर उपांत समय में ७२ प्रकृतियों का क्षय कर देता है। और अन्त समय में १३ प्रकृतियों का क्षय कर देता है। वे ७२ और १३ प्रकृतियाँ कौन हैं ? सो उपांत समय की ७२ प्रकृतियाँ ये हैं—कोई एक वेदनीय देवगति औदारिक शरीर, वैक्रियक शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर, कार्माण शरीर, छहों संस्थान, तीनों अंगोपांग, छहों संहनन, पाँचों वर्ण, दोनों गन्ध, पाँचों रस, ८ स्पर्श, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वरसुस्वर, अनादेय, अयशकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्र। इनके विनाश के बाद ही तुरन्त के समय में जिन १३ का क्षय होता है वे प्रकृतियाँ ये हैं। कोई एक वेदनीय मनुष्यायु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, त्रस बादर पर्याप्त सुभग आदेय यशःकीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र। समस्त १४८ प्रकृतियों का क्षय हो जाने पर जीव का मोक्ष होता है।

औपशमिकादिभव्यत्वानाञ्च ॥ १०—३ ॥

मोक्ष नैमित्तक भावों के अभाव की सूचना—समस्त कर्मों के विनाश से मोक्ष होता है यह बात पूर्व सूत्र में कही गई है। अब इस सूत्र में एक जिज्ञासा का समाधान किया है कि द्रव्य कर्म का नाश हुआ, पर भाव कर्म का भी नाश होता है क्या ? अर्थात भावों का विनाश होता है या नहीं, उसका उत्तर इस सूत्र में है। उत्तर यह है कि ५३ भावों में से कुछ ही भावों को छोड़कर जो पूर्णतया स्वाभाविक हैं। बाकी भावों का भी क्षय हो जाता है। सो इस सूत्र में तो सभी का ही क्षय बताया गया है। फिर आगे सूत्र में जिनका क्षय नहीं होता उनका कथन आयेगा। इस दृष्टि से इस सूत्र में कहा है कि औपशमिक आदिक भावों का और भव्यत्व भावों का क्षय हो जाता है। सूत्र बनाने की प्रक्रिया में यह पद्धति भी हुआ करती है कि जहाँ बहुतों का ग्रहण करना हो और उनमें कुछ भी तत्व हो कि जिनका ग्रहण न करना हो तो पहले सबको बताकर फिर जिसको छोड़ना है उसके लिए अलग सूत्र बनाया जाता है, जैसे कि पंचम अध्याय में चौथे सूत्र में कहे हुए द्रव्यों के विषय में यह बताया कि ये द्रव्य नित्य अवस्थित हैं और अरूपी है लेकिन पुद्गल द्रव्य तो अरूपी नहीं हैं। तो उसकी बात बताने के लिए ५वाँ सूत्र रचा है। ऐसे ही यहाँ कुछ ही भावों को छोड़कर बाकी सब भावों का विनाश हो जाता है। सिद्ध अवस्था में वे भाव नहीं रहते। तो पहले सभी भावों को बता दिया फिर आगे सूत्र में उन भावों का नाम लिया जायेगा जिनका क्षय नहीं होता। सूत्र पद्धति में इस तरह का वर्णन करना लाघव के लिये होता है कि बड़ा सूत्र न बने व सूत्र में अधिक शब्द न डाले जावें। इस सूत्र में औपशमिक आदिक भावों का नाश होता है। इतना ही कह देते तो लाघव हो जाता और भव्यत्व का भी अपने आप ग्रहण हो जाता है। इसका भी नाश हो जाता, सो क्यों नहीं किया ? इसका कारण यह है कि औपशमिक आदिक सभी भावों का नाश तो होता है कुछ को छोड़कर मगर पारिमाणिक भाव में जीवत्व भाव का कभी नाश नहीं होता। भव्यत्व का नाश होता इसके कहने से ही यह साबित हो गया कि जीवत्व भावों का नाश नहीं होता। मोक्ष अवस्था में औदयिक भाव तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कोई रहते ही नहीं। क्षायोपशमिक भाव भी कोई नहीं रहते। औपशमिक भाव कर्म के उपशम से हुआ करते। सो कर्म का क्षय होने पर उपशम ही नहीं है, तो औपशमिक भाव कैसे बताया जाये? क्षायिक भाव में ही है भाव ऐसा कि जिसका शुद्ध अवस्था में विनाश नहीं होता।

निमित्त के हटने से नैमित्तिक भावों के कहने की स्वयं सिद्धि होने से इससूत्र को कहने की व्यर्थता की आशंका और उसका समाधान—यहाँ एक प्रश्न होता है कि जब दूसरे सूत्र में यह बता दिया गया कि समस्त कर्मों का नाश हो जाता है वहाँ मोक्षहै। तो कर्मद्रव्य का विनाश हुआ तो तन्निमित्तक भाव भी न रहा यह बात तो अपने आप सिद्ध हो जाती है फिर इस सूत्र के बनाने की क्या आवश्यकता? इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि यह कोई एकांत नियम नहीं है कि निमित्त के दूर होने पर नैमित्तिक भावों की निवृत्ति हो ही जाये। जैसे चक्र घुमाया जाता डण्डे से तो चक्र घूमने का निमित्त डण्डा है ना? और उस डण्डे को हटा लिया जाए तो भी चक्र घूमता रहता है। तो यह नियम तो न रहा कि निमित्त के दूर होने पर नैमित्तिक भाव भी दूर हो जाते हैं। हाँ ऐसी कई बातें हैं प्रायः कि निमित्त के दूर होने पर नैमित्तिक भाव दूर हो जाते हैं, पर सर्वत्र नियम तो न बना। जैसे आँखें फोड़ने का निमित्त मान लो सूजा है। सूजा लगने से आँख फूट गई। अब सूजा अलग हो जाये तब तो फिर आँख को ज्यों का त्यों हो जाना चाहिये, क्योंकि निमित्त तो हट गया। तो यह सर्वत्र नियम न बैठेगा कि निमित्त के दूर होने पर नैमित्तिक भी दूर हो जायेगा। एक तो यह बात है। दूसरी बात यह है कि भले ही अपने आप अर्थ से यह सिद्ध हो जाये कि कर्म दूर होने से विभावों का भी विनाश हो जाता है फिर भी एकदम स्पष्ट जानकारी के लिए यह सूत्र कहा गया है और आगे बताया जायेगा कि सभी भाव में अभाव नहीं हटता है, मोक्ष में। सो कौन से भाव शेष रह जाते हैं। उनका ज्ञान कराने के लिए यह उनके प्रतिपक्षी भावों के विनाश वाला सूत्र कहा है। अब वे भाव कौन से हैं जिनका कि मोक्ष में अभाव नहीं होता, इसके लिये सूत्र कहते हैं।

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ १०-४ ॥

सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन व सिद्धत्व का मोक्ष में अनुभवन—केवल सम्यक्त्व, केवल ज्ञान, केवल दर्शन और सिद्धपने को छोड़कर बाकी भावों का नाश होता है, इतना भाव, यहाँ छोड़ दिया गया है। यहां अन्यत्र शब्द से इन्हें छोड़कर अर्थ लेना है याने इनके सिवाय शेष का विनाश होता है। यहाँ यह जिज्ञासा होना प्राकृतिक है कि जब एक यह बात कही गई कि इन भावों के विनाश से मोक्ष होता है, याने क्रोधादिक जो विभाव हैं, नैमित्तिक भाव हैं उनके विनाश से मोक्ष होता है तो जैसे औपशमिक आदिक भावों की निवृत्ति कही गई थी उसी प्रकार समस्त क्षायिक भावों की भी निवृत्ति हो जाएगी, फिर तो मुक्त जीव का नाम भी न बताया जा सकेगा, क्योंकि जब पूछा जायेगा कि बतलाओ मुक्ति का क्या स्वरूप है, तो फिर आप क्या बतायेंगे? जब कोई भाव ही उनमें न रहा तो उनकी आप क्या तारीफ करेंगे? तारीफ तो यों की जाती है कि उनके अनन्त ज्ञान है अनन्त दर्शन है, क्षायिक सम्यक्त्व है और सिद्धपना है। अब कल्पना करो कि शंकाकार के आशय के अनुसार सर्व जीवों का अभाव हो जाये तो मुक्ति का नाम भी नहीं लिया जा सकता इसलिए इन विशेष भावों का वर्णन करना आवश्यक हो गया है।

केवलज्ञान केवल दर्शन के अविनाभावी अनंतवीर्यादि भावों का केवल ज्ञान केवल दर्शन में अन्तर्भाव—यहाँ एक जिज्ञासु कहता है कि इस सूत्र में सम्यक्त्व, केवल ज्ञान, केवल दर्शन और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सिद्धत्व, इन चार को ही बचाया है अर्थात ये चार मुक्त जीव में सदा रहते हैं, बाकी का अभाव हो जाता है, सो ऐसा कहने से अनन्त वीर्य आदिक भावों का भी अभाव हो बैठेगा, क्योंकि क्षायिक भावों में से यहां चार ही भाव लिए गए हैं। क्षायिक भाव ९ हैं और एक सिद्धत्व साधारण रूप से सर्व कर्मों का अभाव होने से बना है, उनमें से सिर्फ चार ही नाम बताये गए, फिर अन्य का सद्भाव कैसे माना जायेगा ? इस जिज्ञासा के समाधान में कहते हैं कि अनन्त वीर्य आदिक का मुक्त जीवो में अभाव नहीं है, इन सब भावों का केवल ज्ञान और केवल दर्शन में ही अन्तर्भाव हो गया है, क्योंकि वे अन्य भाव केवलज्ञान, केवलदर्शन के अविनाभावी हैं। जैसे प्रभु के केवलज्ञान हुआ है तो क्या अनन्त वीर्य के बिना केवलज्ञान परिणमन हो सकता है ? अब उनका अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, यह परिणमन सदा बना रहेगा, डटा रहेगा, ऐसा होने में अनन्त वीर्य चाहिए ही, ऐसी जिसके अनन्त सामर्थ्य नहीं है उसके अनन्त ज्ञान का उपयोग बन ही नहीं सकता, और कोई कहे कि अनन्त सुख नहीं कहा गया सो उसका भी अन्तर्भाव यहां ही करना, क्योंकि जहाँ अनन्त ज्ञान है वहाँ अनन्त सुख है। सुख ज्ञानमय ही तो है। ज्ञान से अतिरिक्त सुख नहीं, ज्ञाताद्रष्टा रहना यह ही सुख का स्वरूप है। यद्यपि भेद दृष्टि से गुण अनेक बताये गये हैं, पर अभेद दृष्टि में सर्व का अन्तर्भाव ज्ञान दर्शन में हो जाता है।

बन्ध कारणों का उच्छेद होने पर बन्ध की असंभवता—अब यहाँ जिज्ञासु कहता है कि हो गया मोक्ष मगर बंध की अव्यवस्था तो बनी रहेगी। जैसे कोई घोड़ा बंधा था, छूट गया घोड़ा, मगर वह फिर भी तो बंध सकता है। तो जैसे घोड़ा आदिक किसी एक का बंध निकल गया फिर भी बाद में अन्य बन्ध तो सम्भव है ही, ऐसे ही किसी जीव में बंध न रहा तो भी अन्य बंध तो सम्भव हैं, एक बंध न रहा नया बंध हो जायेगा। इसके समाधान में कहते हैं कि मुक्त जीवों के अब कभी भी बंध सम्भव नहीं है, क्योंकि मिथ्यादर्शन आदिक बंध के कारणों का विनाश हो जाने पर फिर वह कार्य कभी हो ही नहीं सकता। तो पुन: बंध के हेतु नहीं बन सकते इस कारण मुक्त जीवों का कभी बंध नहीं हो सकते। जिज्ञासु पुन: प्रश्न करता है कि भगवान जब समस्त प्राणियों का निरख रहे हैं तो जो जीवआपत्ति में पड़े हुए हैं, व्याकुल हो रहे, दु:खी हो रहे, ऐसा इस जगत को जानते हुए भगवान के करुणा तो हो जायेगी और जब कारुण्य हो गया तो बंध भी हो जायेगा, क्योंकि यहाँ देखते हैं कि अच्छा से अच्छा ज्ञानी भी जब किसी दु:खी को देखता है तो उसका चित्त अगर दया से न भरे तो कहा जायेगा कि इसका हृदय कठोर है। पर भगवान का हृदय कठोर तो न होना चाहिए। दु:खी जीवों को देखकर दया हो ही जायेगी और दया होने से फिर बन्ध हो गया। इसके समाधान में कहते हैं कि मुक्त जीवों के समस्त आश्रवों का क्षय हो चुका है। भक्ति, परिणाम, दया आदिक जो भी भाव हैं वे वे सब राग के विकल्प हैं, राग का कोई भी विकल्प वीतराग प्रभु में नहीं हो सकता। सो राग विकल्प न होने से मुक्त जीवों में कभी भी बंध सम्भव नहीं हो सकता। यदि कारण के बिना ही मुक्त जीवों को मुक्ति होने लगे तो मोक्ष नाम की कोई चीज ही न कहलायेगी। मुक्त हो गए, फिर कभी बंध गए फिर मोक्ष क्या है ? सो मुक्त जीवों के जैसे सर्व कर्मों का क्षय हुआ है वैसे ही सर्व इन राग विकल्पों का भी क्षय हो चुका है। इस कारण उनकी मुक्ति सदा रहेगी।

मुक्त जीवों के पतन की असम्भवता—अब यहाँ एक शंकाकार कहता है कि मुक्त जीव तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लोक के अग्र भाग में रहते हैं, और वे भी हैं बहुत ऊपर। तो स्थान वाले हैं मुक्त जीव सो कभी उनका स्थान से गिरना भी सम्भव हो जायेगा। जैसे अनेक चीजें जिस स्थान पर रखी हैं उससे हट भी जाती हैं, इसके उत्तर में कहते हैं कि यह शंका बिल्कुल निर्मूल है। जब प्रभु आश्रवरहित हो गये तो उनका नीचे गिरना कैसे सम्भव है? जिसमें जल आ रहा हो ऐसी नौका वगैरह में उसका तो नीचे पतन देखा जाता है, पर आश्रव न हो, कोई दूसरी उपाधि आ ही न रही हो तो उसका अधः पतन कैसे होगा? भगवान मुक्त जीव आश्रवरहित हैं, वे कभी अपने स्थान से गिर नहीं सकते। दूसरी बात यह जानें कि मुक्त जीवों में अब गुरुता न रही, वजन न रहा। जब तक कर्म का और शरीर का सम्बन्ध था तब तक गुरुता थी। अब वह गुरुता (वजन) न रही तो उनके स्थान से गिरने का प्रश्न ही क्या? जो वजनदार हो ताड़फल वगैरह उनका डण्ठल का संयोग मिट जाये तो वह नीचे ही गिरता है, पर जैसे आकाशके प्रदेश हैं, उसमें वजन कुछनहीं है तो क्या आकाशके प्रदेश भी गिर जाते हैं? ऐसे ही मुक्त जीवों में भी गुरुता (वजन) न रही। जैसे आकाश के प्रदेश हैं वैसे ही मुक्त जीवों के प्रदेश हैं, आकाश हैं सीमा रहित। मुक्त जीवों के प्रदेश हैं सीमा सहित। आकाश है अचेतन, मुक्त जीव हैं चेतन। यह तो अन्तर है, पर प्रदेश की दृष्टि से देखें तो आकाश की तरह ही आत्मा अमूर्त है। यदि स्थान वाला होने से पतन का नियम बनाया जाए तो धर्मादिक द्रव्य भी तो एक स्थान में हैं। उनका कैसे पतन नहीं होता? तो मुक्त जीव मुक्त हुए लोक के अग्र भाग पर स्थित हैं। अब वे कभी भी अपने पद से गिर नहीं सकते।

अवगाहन गुण के कारण एक में अनेक सिद्धों का अवस्थान—अब यहाँ एक शंकाकार कहता है कि सिद्ध लोक में स्थान तो ४५ लाख योजन मात्र है। जितना यहाँ ढाई द्वीप में स्थान है उतना ही स्थान सिद्धलोक में है पर सिद्ध तो हैं अनन्त संख्या में। जैसे कि करणानुयोग में बताया है कि लोक में सबसे कम जीव मनुष्यगति के हैं। उनसे उनसे असंख्यातगुने नरकगति के हैं। उनसे असंख्यातगुने देवगति के हैं। उनसे असंख्यातगुने त्रस जीव हैं और उनसे असंख्यातगुने निगोद को छोड़कर सब स्थावर जीव हैं। और उनसे अनन्तगुने सिद्ध भगवान हैं उन से अनन्तगुने निगोदिया जीव हैं। तो निगोद जीवों की जो गणना है उसके बाद का नम्बर सिद्ध भगवान का बताया, तो इतने अनन्त सिद्ध हैं। वे उतने से स्थान में कैसे रह सकते हैं? वे तो एक में एक टकरायेंगे। तो इसके उत्तर में कहते हैं कि यह प्रश्न बिना विचारे किया गया है। सिद्ध भगवान में अवगाहन शक्ति है। सिद्धप्रभु के जो ८ मूल गुण बताये गए हैं। उनमें एक अवगाहन नाम का भी गुण है सो सिद्ध प्रभु तो स्पष्ट अमूर्त हैं, वहाँ तो कितना ही अवगाहन हो जाये। पर यहाँ भी देखिये जो मूर्तिमान पदार्थ हैं। जैसे अनेक रत्नदीपकों का प्रकाश। सो थोड़ी सी भी जगह में उन सबका प्रकाश समा जाता है, वहाँ तो विरोध नहीं आता, फिर जो अमूर्तिक है, अवगाहन शक्ति से युक्त है। मुक्त जीवों में विरोध का क्या काम? वे प्रभु अमूर्त हैं। इसी कारण से तो प्रीति परिताप आदिक का सम्बन्ध नहीं होता। अमूर्त है स्पष्ट याने उपचार से भी मूर्त नहीं है। सो उनमें जन्म मरण बाध आदिक कुछ नहीं होते। प्रभु तो बाधारहित हैं, परम आनन्दमय हैं। मुक्त जीवों के जो आनन्द है। ज्ञान का विकास है उसका कोई अपमान नहीं हो सकता याने कोई दृष्टांत नहीं मिल सकता कि मुक्त भगवन्त का ज्ञान व सुख अमुक की तरह है। यदि दृष्टांत भी दिए जायेगा तो मुक्त जीवों के ज्ञान सुख के लिये मुक्त जीवों का ही दृष्टांत दिया जा सकता। जहाँ ज्ञान और सुख हीनाधिक होता है वहाँ याने संसार में तो ज्ञान सुख का उदाहरण दिया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जा सकता, पर मुक्त जीवों का तो निरतिशय ज्ञान है अर्थात सम्पूर्ण ज्ञान है, इस कारण उसकी उपमा के लिये जगत में कोई भी वस्तु नहीं है।

मुक्त जीवों के आकार को चरम शरीरानुविधायिता—अब यहाँ एक शंकाकार कहता है कि मुक्त जीवों में आकार तो कुछ है नहीं, जैसे संसारी मनुष्यादिक में आकार देखा जाता है। आँखों से नजर आता है, ऐसे ही वहाँ आकार न होने से मुक्त जीवों का अभाव ही समझियेगा। इसके उत्तर में कहते हैं कि मुक्त जीवों के आकार नहीं है, ऐसा कहना अयुक्त है। मुक्त जीव जिस भव के बाद मुक्त हुए थे अब पुरुषभव का जो शरीर है उसका आकार अब भी उनका आत्मा है। और उस प्रमाण में आत्मा है जिस प्रमाण में शरीर था। तो उनका आकार चरम शरीर के आकार का अनुविधान ही तो है अर्थात उसके अनुसार उनका आकार है। शंकाकार पुनः कहता है कि जब शरीर के अनुविधायी हैं सिद्ध अर्थात जैसा शरीर था वैसा ही वह अब आकार में जीव है। यह बात आप कहते हो सो तो ठीक मगर जब तक शरीर है तब ही तक तो शरीर के आकार आत्मा होगा। शरीर के अभाव होने से उस आत्मा का आकार भी फैल जाना चाहिये। जैसे कि कर्मों का विनाश होने से ज्ञानादिक का पूरा विकास हो जाता है तो शरीर के हट जाने से लोकाकाश के प्रदेश पूरे लोक में फैल जाने चाहिये सिद्ध भगवन्तों के। इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि मुक्त जीव जिस चरम शरीर से मुक्त हुये हैं उस ही के आकार रहते हैं, अन्य आकार नहीं बनते। इसका कारण यह है कि अन्य प्रकार के आकार बनने का वहाँ कोई कारण नहीं है। आत्मा के प्रदेश फैलें इसमें कर्मोदय कारण हुआ करता है, पर वहाँ कर्म हैं ही नहीं तो फैलने का कोई कारण न रहा। इसी प्रकार सिकुड़ने का भी कोई कारण न रहा। जो आकार मुक्त होते समय है उस आकार से भिन्न किसी आकार पाने का कोई कारण नहीं है।

जीव के प्रदेशों के सकोच विस्तार के कारण पर प्रकाश - यह जीव संसार अवस्था में जो सिकुड़ता और फैलता था। वह हाथी के शरीर में गया तो उतना फैल गया, चींटी के शरीर में गया तो सिकुड़ गया। तो यह संकोच और विस्तार नाम कर्म के सम्बन्ध से हो रहा था जैसे दीपक का प्रकाश फैले और सिकुड़े यह उस आधारभूत क्षेत्र के अनुसार है। घड़े में दीपक धर दिया उतने में ही प्रकाश रहेगा, किसी बड़े बर्तन में रख दिया तो उतने में प्रकाश जलेगा। कमरे में रख दिया तो कमरे में प्रकाश जलेगा। तो जैसे उपाधि के सम्बन्ध से दीपक प्रकाश का फैलना सिकुड़ना होता है उसी तरह नामकर्म के सम्बन्ध से इस जीव के आकार सिकुड़ना, फैलना होता था। अब नामकर्म रहा नहीं। कोई भी कर्म नहीं है तो जो आकार मुक्त होते समय जीव का था वही आकार रह जाता है। अब शंकाकार पुनः कहता है कि आत्मा में आकार फैलता और सिकुड़ता था। उसे समझाने के लिए दीपक का जो दृष्टांत दिया है उसमें तो भ्रम हो जाता है। दीपक तो मूर्तिमान चीज है, आत्मा अमूर्त है, तो अमूर्त में किसी कार्य के उदाहरण में मूर्तिमान का उदाहरण फिट नहीं हो सकता, तो यह दृष्टान्त युक्त न रहा। इसके उत्तर में कहते हैं कि यह शंका ठीक नहीं है, क्योंकि संसार अवस्था में जीव को कथञ्चित् अमूर्त और कथञ्चित मूर्त कहा जाता है। जब जीव के उपयोग स्वलक्षण की अपेक्षा देखा जाए तो वह अमूर्त है। ज्ञानोपयोग, वहाँ मूर्त का क्या मतलब ? और जब बंध परिणाम की अपेक्षा से देखा जाये तो वह जीव मूर्त है। तो जब किसी प्रकार मूर्तपना संसार अवस्था में सिद्ध होता है तब तो दृष्टान्त ठीक रहा ना ?

दृष्टान्त में दार्ष्टान्तिगत विवक्षित धर्म साधकता—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि संसार अवस्था में यह जीव सिकुड़ता था और फैलता था दीपक के प्रकाश की तरह तो जैसे दीपक का प्रकाश

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सिकुड़ने और फैलने के धर्म वाला होने से अनित्य भी तो है, उसका विनाश होता है तो ऐसे ही जब जीव सिकुड़ता है और फैलता है तो उसका भी विनाश हो जाना चाहिए। इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि दृष्टान्त जो दिया जाता है सो जिस गुण की प्रसिद्धि के लिए दिया जाता है उस ही के लिए अर्थ लगाया जाता है, अन्य सभी बातों के लिये नहीं लगाया जाता। जैसे किसी ने कहा कि यह कन्या चन्द्रमुखी है तो क्या कोई वहाँ यह शंका करता है कि जितने गुण चन्द्र में हैं वे सब इसमें आ जायेंगे ? वहाँ तो केवल इसलिए चन्द्र की उपमा दी कि जैसे चन्द्र देखने में भला लगता है ऐसे ही यह कन्या देखने में भली लगती है। इतना भर अर्थ है। कहीं चन्द्र का दृष्टान्त देने से यह अर्थ न हो जाएगा कि चन्द्र जड़ है तो यह भी जड़ है या चन्द्र में जो-जो गुण हैं वे-वे सब गुण इसमें हैं, तो ऐसे ही आत्मा के संकोच विस्तार के लिए जो दीप प्रकाश का दृष्टान्त दिया है सो यद्यपि दीप में अनेकों गुण हैं लेकिन दृष्टान्त तो केवल संकोच और विस्तार की समानता बताने के लिए दिया गया है। अगर दृष्टान्त की सारी बातें दृष्टान्त में ली जायें तो दुनिया में कोई दृष्टान्त हो ही नहीं सकता।

आत्मा के अभाव को मोक्ष बताने वाले दार्शनिक के सिद्धान्त की मीमांसा – यहाँ एक दार्शनिक प्रश्न करता है कि मोक्ष तो आत्मा के सर्वथा अभाव का नाम है, जैसे दीपक जल रहा है तो दीपक का मोक्ष क्या कहलायेगा ? दीपक बुझ गया, नहीं रहा इसी के मायने मोक्ष है। तो ऐसे ही आत्मा का मोक्ष हो गया, इसका अर्थ यह होना चाहिए कि अब आत्मा न रहा, बुझ गया, इसी ही का नाम मोक्ष है। जैसे वही तैल अग्नि इनका सम्बन्ध होने पर वह दीपक जलता रहता है और वह निरन्तर जल रहा है और उनका विनाश हो जाए, बत्ती न रहे, तैल न रहे तो वह दीपक कहाँ जलता है ? न वह पूरब पश्चिम की ओर जाता है, न ऊपर नीचे कहीं जाता है, बस वहीं अत्यन्त विनाश को प्राप्त होता है, ऐसे ही कारणवश स्कन्धों की संतति चल रही है। तो वह स्कन्ध समूह का ही नाम जीव रख दिया गया था, अब समस्त क्लेश नष्ट हो गए तो वह जीव न तो किसी दिशा को जाता है, न किसी विदिशा को जाता है, किन्तु वहाँ ही अत्यन्त प्रत्यय को प्राप्त होता है, इस कारण हम तो यह ही समझते हैं कि जीव के सर्वथा अभाव हो जाने का नाम मोक्ष है। अब उक्त शंका के उत्तर में कहते हैं कि दीपक का भी निरन्वय नाश नहीं होता। दीपक में जो परमाणु हैं वे परमाणु उजेले रूप न रहे, इतनी ही तो बात हुई मगर अन्धेरे रूप हो गये, वे परमाणु जायेंगे कहाँ ? उन परमाणुओं का नाश नहीं होता, ऐसे ही कर्म का अभाव हो जाने पर आत्मा का नाश नहीं होता, या आत्मा के विभावों का संतान मिट जाने पर आत्मा का नाश नहीं होता। यह बात स्पष्ट भी देखी गई कि जैसे कोई पुरुष साँकल आदिक से बंधा है तो साँकल आदिक तोड़ देने पर क्या वह पुरुष भी मिट जाता है ? वह पुरुष तो रहता ही है, ऐसे ही बंध छुटकारा हो जाने पर कर्म बंध नहीं रहता, पर आत्मा तो रहता ही है।

कर्मबन्ध से मुक्त हो जाने पर उसी स्थान पर मुक्त जीवों के रहे आने की आरेका— यहाँ यह भी शंका न रखना चाहिए कि जिस जगह में कर्म दूर हुए हैं, मुक्त भगवान को उसी जगह रहना चाहिए, क्योंकि गति का कारण कुछ न रहा। जब तक कर्म थे तब तक जीव यहाँ वहाँ भटकता था। जब कर्म नष्ट हो गये तो अब यह जीव ऊपर कैसे जायेगा ? दिशाओं में कैसे जायेगा ? इसलिए जहाँ से मुक्ति हुई है वहाँ ही भगवन्त को रहना चाहिये। इसके उत्तर में कहते हैं कि जो शंका की है उसका उत्तर अभी दिया जायेगा, यह प्रश्न अभी विचारणीय है कि उस मुक्त को वहीं ठहरना चाहिए या बंध का अभाव होने से उसे गमन करना चाहिए ? यहाँ तो इतना मानो कि बंध हट जाने पर आत्मा का

http://sahjanandvarnishastra.org/

विनाश नहीं होता, वह स्थिर है। अब रही यह शंका कि मुक्त आत्मा में वजन तो है नहीं इसलिए नीचे नहीं जा सकता और योग रहा नहीं सो तिरछा आदिक गति भी नहीं हो सकती, सो उन्हें वहीं ठहरना चाहिए। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए अब सूत्र कहते हैं।

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥ १०-५ ॥

सर्वकर्म विप्रमोक्ष के अनन्तर मुक्तात्मा का ऊर्ध्वगमन—कर्मों के क्षय के अनन्तर यह जीव ऊपर जाता है लोकपर्यन्त। जहाँ तक लोक है वहाँ तक इसका गमन है। इसका बाह्य कारण यह है कि धर्मास्तिकाय लोक में है अलोक में नहीं, और धर्मास्तिकाय का निमित्त पाकर गति हुआ करती है। तो आगे धर्मास्तिकाय न होने से वह इससे ऊपर नहीं गया। इस सम्बन्ध में आगे अलग सूत्र आयेगा। वहाँ इसका विवरण किया जायेगा, पर संक्षेप में यह जानें कि धर्मास्तिकाय एक अलग द्रव्य है गमन करने वाला मुक्त जीव एक अलग चेतन द्रव्य है। कोई द्रव्य किसी द्रव्य की परिणति नहीं करता, तो धर्मास्तिकाय ने उसे जबरदस्ती चलाया नहीं, धर्मास्तिकाय ने जीव को जबरदस्ती ठहराया नहीं। जैसे कि जल मछली को जबरदस्ती चलाता नहीं, मछली में चलने की योग्यता है तो वह जल का निमित्त पाकर चल देती है, तो ऐसे ही जीव पुद्गल चलने के योग्य हैं तो धर्मास्तिकाय का निमित्त पाकर चल देते हैं। सो एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को परिणमाता नहीं, पर निमित्त नैमित्तिक भाव सर्वत्र अबाधित है। तो सूत्र में तदन्तरम् इसमें दिये हुये तत् शब्द से दूसरे सूत्र में कहे गये सर्व कर्म से मोक्ष होने का ग्रहण किया है। जैसे ही जीव कर्मों से अलग होता है तो एकदम सीधा ऊर्ध्वगति से गमन करने लगेगा, शिखर पर विराजमान हो जाता है, यहाँ अलोकान्तात् शब्द में जो आम् का प्रयोग किया है उसका अर्थ अभिविधि है, अर्थात् लोकपर्यन्त और अभिविधि ऐसे दो प्रकार होते हैं। जैसे यहाँ तक जायेगा, ऐसा कहने पर वह स्थान के अन्त तक गया, ये दो अभिविधि अर्थ हैं और एक उस स्थान से पहले तक गया यह मर्यादा अर्थ है। तो यहाँ लोक के अन्त तक गमन है अर्थात जहाँ वे विराजे हैं उसके बाद लोकाकाश नहीं है। अब यह जिज्ञासा होने पर कि कैसे जानें कि यह जीव ऊर्ध्वगमन करके लोक के अन्त में विराजमान होता है? उसका निर्णय करने के लिए हेतु और दृष्टान्त दोनों को बताने के लिए सूत्र कहते हैं।

पूर्व प्रयोगादसंगत्वात् बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥ १०-६ ॥

आविद्धकुलालचक्रवद् व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥ १०-७ ॥

कर्ममुक्त होते ही ऊर्ध्वगमन का सोदाहरण प्रथम कारण—कर्मों का क्षय हो जाने पर यह जीव ऊपर ही क्यों जाता है? और क्यों जाना ही पड़ता है, इस सम्बन्ध में दृष्टान्त देकर हेतु देकर निर्णय किया गया है। मुक्त जीव कर्म से छुटकारा पाते ही यह जीव एकदम सिद्ध हो जाता है। और ऊपर ही जाता है। इसका पहला हेतु है पूर्व प्रयोग। मोक्ष की प्राप्ति के लिये इस भव्य जीव ने पहले बहुत-बहुत मनन किया। सिद्ध भगवन्तों को प्रणाम करने के लिए उनके गुणानुवाद के लिए लोक के अन्त में इसका ध्यान रहा, इस कारण पूर्व प्रयोग के वश अब कर्मों का क्षय होने पर यद्यपि वह प्रयोग न रहा तो भी वह ऊपर ही जाता है जहाँ कि यह ध्यान बनाये रहता है। जैसे कुम्हार चाक को घुमाता है, डंडे को खूब घुमाने के बाद वह डंडे को छोड़ देता है, चक्के से हट भी जाता है तो भी वह चक्र चलता रहता है क्योंकि उसमें बहुत संस्कार बनाता है घूमने का, इसी तरह यहाँ भी समझिये कि मुनिराज का पहले संस्कार बना रहता था लोक के शिखर में ध्यान करने का, उपयोग सिद्ध भगवन्तों में रहा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करता था और भावना उस ही सिद्ध लोक के पाने की रहती थी, तो उस प्रयोग के कारण यद्यपि अब वह प्रयोग नहीं है कर्म का नाश होने पर तो भी उस पूर्व प्रयोग से वह ऊर्द्धगमन करके लोक के शिखर पर जाकर विराजमान होते हैं। तो इस प्रकार यह जीव पहले अनेक भावनाओं से और सिद्ध लोक के ध्यान से सिद्ध प्रभु के स्मरण के संस्कार बनाये रहने से कर्म का क्षय होने पर भी यह ऊर्द्ध गमन करके वहाँ ही पहुंचता है।

सर्वकर्म मुक्त होत हो ऊर्ध्वगमन का सोदाहरण द्वितीय कारण मुक्तात्मा के ऊर्द्ध गमन का दूसरा कारण बतलाया है असंग होने को। जैसे कि मिट्टी के लेप से भरी हुई तूमी पानी में नीचे पहुंच जाती है, पर पानी में फूलते रहने के कारण मिट्टी तूमी से वह बहकर अलग होती जाती है और वह तूमी हल्की हो जाने से पानी के ऊपर आ जाती है इसी प्रकार कर्म के भार से दबा हुआ यह जीव उस कर्म की गुरुता के कारण यह संसार में पड़ा रहता है और जब कर्म का संग छूट जाता है तो यह लघु होते ही अकेला होते ही ऊपर को ही जाया करता है। यहां एक शंका हो सकती है कि अन्य द्रव्य के मिलने पर तो वह नीचे पड़ा है, पर संयोग छूट जाने पर उसकी नियत गति नहीं होती। फिर तो कैसे ही गमन कर जाये ? फिर यह किस तरह सिद्ध भगवान के कर्म से मुक्त होने पर उनकी गति जैसी चाहे हो जानी चाहिए। ठीक सही ऊपर ही क्यों हो जाती है। तो इस शंका के समाधान में वह समझें कि इस जीव को ऊपर जाने का स्वभाव ही है अर्थात तिरछा-तिरछा जाने की इसमें प्रकृति नहीं है इस कारण वह ऊपर ही जाता है। कहीं फिर यह शंका न करना कि ऊपर जाने का स्वभाव ही है तो जब ऊपर जाने का काम न रहेगा तो स्वभाव मिट जाने से और सिद्ध भगवान के जीव का भी अभाव हो जायेगा। जैसे अग्नि का स्वभाव कर्म है, गर्मी मिट जाए तो अग्नि नहीं रहती। तो यह शंका यों न करना कि पहली बात तो यह है कि ऊर्द्ध गति का स्वभाव है बराबर बना हुआ है, पर जो ऊर्द्ध गमन का परिणमन है वह तो धर्मास्तिकाय का निमित्त पाकर होता है। सो धर्मास्तिकाय के अभाव में गमन नहीं है। दूसरी बात यह है कि ऊर्द्ध गमन स्वभाव है, इसके कहने का भाव यह है तिरछा, टेढ़ा, नीचा चलने का इसमें स्वभाव नहीं है। तो अन्य प्रकार की गति का स्वभाव नहीं है यह बताने के लिए ऊर्द्ध-गति स्वभाव कहा जाता है।

कृत्स्नकर्म विप्रमुक्त होते ही ऊर्ध्वगमन होने का सोदाहरण तृतीय कारण—ऊर्द्ध गमन में तीसरा हेतु दिया गया है बंधच्छेद। जैसे कि एरण्ड का बीच एक मोटे छिलके में बंधा हुआ रहता है, जब उसका छिलका फूटता है तो वह बीज ऊपर जाता है यह बात दूसरी है कि वह ऊपर कहाँ जायेगा ? जायेगा सो थोड़ा उचक कर, ऊपर जाकर नीचे गिर जाता है किन्तु यह केवल उस चिटकने का, उस छिल्का के बंधन के फूटने का क्या प्रभाव है यह बात बतलाना है तो बंध का छेद होने से वह बीज ऊपर को जाता है इसी प्रकार मनुष्यादिक भवों में रुलाने वाले गति जाति आदिक नामकर्म के उदय थे, उनका सम्बन्ध था, तो जब समस्त कर्मों का बन्धन मिट जाता है तो मुक्त जीवों की गति ऊपर को ही होती है। जब तक बंधन था उस बंधन के समय इसका एक जगह रहना, यहाँ-वहाँ डोलना ये सब बातें चलती थीं, पर बन्ध का विनाश होते ही एकदम अपने एकत्व स्वरूप में यह जीव आ गया। अब यहाँ यह अपने वास्तविक अमूर्त स्वभाव को पाकर, विकास पाकर यह जीव ऊपर ही गमन करता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सर्वकर्ममुक्त होते ही जीव का ऊर्द्धगमन होने का सोदाहरण चतुर्थ कारण – ऊर्द्धगमन के सम्बन्ध में चौथा हेतु है – तथागती परिणाम अर्थात जीव का ऊर्द्धगमन करने का स्वभाव ही है। जैसे कि अग्नि की शिखा। अगर अग्नि में से ज्वाला निकलेगी तो वह ऊपर ही उठती है। क्योंकि उसका ऐसा ही स्वभाव है। भले ही जब कभी हवा का जोर हो तो हवा की प्रेरणा से वह शिखा तिरछी भी हो जाती है। किंतु जहाँ कोई प्रेरणा नहीं है, कोई सम्बन्ध नहीं है वायु का तो अग्नि की शिखा स्वभावत: ऊपर ही उठती है, ऐसे ही यह मुक्त आत्मा भी ऊर्द्धगति स्वभाव के कारण ऊपर ही जाता है। हाँ यह नाना प्रकार की गति विकार बनने के कारणभूत कर्म के सम्बन्ध से तिरछे नीचे भी जीव जाता था पर जब उन प्रेरक कर्मों का विच्छेद हो गया तब तिरछे नीचे जाने का कोई कारण ही न रहा, सो ऊर्द्धगमन स्वभाव के कारण यह मुक्त आत्मा ऊपर ही जाता है। इस प्रकार यह जो ऊर्ध्वगमन स्वभाव से कर्ममुक्त होते ही एक समय में लोक के अन्त तक पहुंच जाता है और यह बड़ी शोभा ही दे रहा है कि भगवान हम सबके ऊपर विराजमान हैं और लोगों की ऐसी आदत भी है कि यदि भगवान को कभी नमस्कार करेंगे तो ऊपर सिर उठाकर नमस्कार करते। कोई नीचे निरखकर नमस्कार नहीं करता। इससे भी जाहिर होता है कि सिद्ध भगवान लोक के शिखर पर विराजमान हैं।

असंगत्व व बन्धच्छेद हेतु में दिये गये संग और बन्ध शब्द की अर्थान्तरता—यहाँ एक शंकाकार कहता है कि यहाँ जो ५ हेतु दिये गये हैं बीच के दूसरे और तीसरे। दूसरा हेतु है संगरहित होने से ऊर्ध्वगमन होता है। तीसरा हेतु है बंध का वियोग होने से ऊर्ध्वगमन होता है तो ये तो दोनों ही एक बात रही। संग न रहा, बन्ध न रहा। इन दोनों में क्या अन्तर है? वियोग की बात तो दोनों में ही आ गई। फिर इसे दुबारा न कहना चाहिये था। ३ ही हेतु बतलाते हैं। इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि इन दोनों का अर्थ एक नहीं है। संगरहित होना इसका अभिप्राय दूसरा है और बन्ध का विच्छेद होना इसका अभिप्राय दूसरा है। यद्यपि बन्ध धातु अतिसंग में भी आती है। याने दृढ़ संग बनना तो भी इसका अभिप्राय दूसरा है। इसका क्या अर्थ है सो सुनो—बन्ध का अर्थ है एक में दूसरे का प्रवेश होने पर बिना विभाग के ठहर जाना। इसका नाम बंध है। जैसे कि कर्म जीव प्रदेशों में प्रवेश कर अविभाग रूप से ठहर गये अर्थात बन्ध होने पर विभाग नहीं बन पाता कि यहाँ ये दो चीजें हैं। जैसे अनेक परमाणुओं का बन्ध होने पर स्कंध बन गया तो अब स्कंध में विभाग नहीं डाल सकते कि यह परमाणु यह है। यह यहाँ है। यह तो कहलाया बंध और संग कहलाया एक दूसरे के निकट प्राप्त हो जाना। तो इस प्रकार संग में और बंध में अर्थभेद है। सो जब संग छूटा तो इस हेतु से ऊर्ध्वगमन सिद्ध किया और जब वह बंध का क्षय हुआ तो इस हेतु से ऊर्ध्वगमन सिद्ध किया। जब अन्य प्रकार की गति का कारण न रहा अर्थात पुण्य पाप कर्म न रहे तो पुण्य पाप के हट जाने पर मुक्त जीव की अब और प्रकार की गति नहीं होती। वह मात्र ऊर्ध्वगमन स्वभाव से ऊपर ही जाकर लोक पर्यन्त पहुंचता है।

असंगत्व हेतु की समीचीनता में शंकाकार द्वारा आरोपित आरेक का समाधान करके जीव के ऊर्द्धगमन का उपसंहार—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि दूसरे हेतु के दृष्टांत में तूमी का उदाहरण पेश किया है कि जैसे तूमी में मिट्टी का लेप लगा रहे तो पानी में नीचे पड़ी रहती है और ज्यों ही मिट्टी का लेप हटता है त्यों ही तूमी पानी के उपर आ जाती है। तो यह उदाहरण ठीक नहीं बैठता क्योंकि वह तूमी जो ऊपर आयी है वह हवा की प्रेरणा से ऊपर आयी है। तब उसमें संगरहितपने का

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हेतु तो नहीं आया। इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि तूमी जो पानी में ऊपर आयी है सो वह यदि हवा के ही कारण आई होती तो वह तिरछी तिरछी कैसी भी डोलती। वह सीधं ऊपर ही कैसे आयी ? जैसे कि तूमी या पत्ते आदिक जो हल्की चीजें यहाँ पड़ी हैं, हवा के कारण उनकी गति होती है तो अटपट होती है। वह ऊपर ही सीधं जाये ऐसी नहीं होती। दिशा विदिशा नीचे ऊपर जैसे चाहे पत्ते उड़ते हैं ये हवा के कारण ही, इस दृष्टांत में यदि तूमी की गति मानी गई होती तो यह तिरछी भी जावे। पर लेपरहित तूमी तिरछी जाती हुई नहीं पाई गई। वह सीधी ही गमन करती। इस कारण यह दृष्टांत युक्त है और इसी प्रकार यह सिद्ध किया गया है कि जब तक अष्टकर्मों का लेप इस जीव के साथ चल रहा है तब तक यह ऊपर नीचे अनेक गतियों में गमन करता रहता है और नरकादिक भवों को धारण करता रहता है। और जैसे ही उन समस्त कर्मों का संग दूर हुआ और इसी कारण शरीर का भी संग दूर हुआ तो ऐसा अत्यन्त निसंग होने से यह मुक्त आत्मा एक समय में ही ऊर्ध्व-गमन करके लोक के अन्त में विराजमान हो जाता है। अब यह बतला रहे हैं कि लोक के ऊपर मुक्त जीव क्यों नहीं गमन करते।

धर्मास्तिकायाभावात ॥ १० ८ ॥

धर्मास्तिकाय का अभाव होने से लोक के बाहर मुक्तात्मा की गति का अभाव – गति के उपग्रह का कारणभूत धर्मास्तिकाय लोक के ऊपर नहीं, इस कारण मुक्त जीवों का अलोक में गमन का अभाव है। यदि धर्मास्तिकाय द्रव्य न माना जाए तो लोक और अलोक का विभाग नहीं हो सकता है। लोक उसे कहते हैं जहाँ छहों द्रव्य हों। अलोक उसे कहते हैं कि जहां केवल आकाश हो। तो गमन करने वाले तो जीव और पुद्गल ये २ द्रव्य हैं। तो ये आगे गमन क्यों नहीं करते कि धर्मा-स्तिकाय है। धर्मास्तिकाय लोकाकाश प्रमाण ही है। असंख्यात प्रदेशी है। वह जितने में है वह लोकाकाश है। यहाँ एक जिज्ञासा की जा सकती है कि प्रत्येक पदार्थ अपनी योग्यता से परिणमते हैं। किसी भी पदार्थ को अन्य पदार्थ परिणमाता नहीं है। फिर धर्मास्तिकाय ने जीव पर क्या प्रभाव डाला। या धर्मास्तिकाय ने मुक्त जीव पर क्या प्रभाव डाला ? समाधान उसका यह है कि यदि एक द्रव्य को ही देखा जाय तो वहाँ यह ही दिखेगा कि यह मुक्त जीव अपनी योग्यता से यहाँ तक गमन कर रहा और यहाँ से आगे गमन नहीं कर रहा और कोई नई बात बनती है तो वह निश्चित है कि किसी निमित्त को पाकर बनती है।

निमित्तसान्निध्य में अपूर्व अवस्थारूप परिणमने को उपादान में कला का उद्भव – यद्यपि निमित्तभूत द्रव्य उपादान में अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, प्रभाव कुछ भी नहीं डालता, लेकिन उपादान में ऐसी ही कला है कि योग्य उपादान किस प्रकार के निमित्त का सन्निधान पाकर किस प्रकार परिणम जाता है। यह उपादान की कला है। सो जीव और पुद्गल में एक कला यह है कि वह धर्मास्तिकाय के सद्भाव का निमित्त पाकर गमन करता है जैसे कि जल में रहने वाली मछली गमन करती है तो जल गमन नहीं कराता, किंतु उस मछली में ही शक्ति है, योग्यता है सो वह अपनी परि-णति से ही चलती है, मगर मछली ने यह कला जल का सन्निधान पा करके खेला है। जहाँ जल का सन्निधान नहीं है। वह मछली कहीं बाहर पटक दी जाए जहाँ पानी नहीं है तो वहाँ वह नहीं चल सकती है। तो जैसे जल ने मछली की गति नहीं करायी और उस गति क्रिया में जब मछली परि-णमन कर रही है तो वह परिणमन दूसरे के आधीन नहीं है, पर मछली में वह गतिकला जल के

http://sahjanandvarnishastra.org/

सन्निधान में बनी है, ऐसे ही धर्मास्तिकाय जीवद्रव्य को चलाता नहीं है अधर्मास्तिकाय जीव को ठहराता नहीं है किन्तु उस जीव में ही ऐसी कला है कि वह धर्मास्तिकाय के सद्भाव में ही गमन करे। अधर्मास्तिकाय का निमित्त पाकर वह ठहरेगा। तो ये मुक्त जीव कर्मों से मुक्त होते ही ऊर्ध्वगमन करते हैं और ये जहाँ तक धर्मास्तिकाय है वहाँ तक गमन करते हैं। आगे धर्मास्तिकाय का अभाव होने से उनका गमन नहीं है।

सिद्ध भगवतों के विशेष परिचय की जिज्ञासा—अब यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि जो ये जीव मोक्ष को प्राप्त हुए हैं सो इनके कार्माणशरीर रहा नहीं, औपशमिक आदिक भाव रहे नहीं, तब इसका कुछ स्वरूप, स्वभाव कुछ जानने में व्यक्त रूप से आता नहीं तब यह किसी भी रूप से कुछ बताया जाने के योग्य नहीं है क्या, याने इन सिद्ध भगवन्तों के सम्बन्ध में कुछ भी व्यपदेश, चर्चा क्या नहीं की जा सकती है ? क्या ये सभी सिद्ध हमारे वचन व्यवहार से अतीत हैं ? याने हम लोग उनका कुछ वर्णन नहीं कर सकते। इसका स्पष्ट कारण होना चाहिए। तो स्पष्ट कारण यह है कि किसी अपेक्षा से सिद्ध का वर्णन किया जाना शक्य है। वह किस प्रकार, उस ही को अगले सूत्र में कहेंगे। यह जिज्ञासा क्यों हुई कि मुक्त जीव अमूर्त, अखण्ड स्वभाव जैसा है उसके अनुरूप उनका विकास है। और उस विकास की दृष्टि से एक सिद्ध का दूसरे सिद्ध में कोई अन्तर नहीं है। चाहे कोई तीर्थंकर होकर सिद्ध हुआ हो या सामान्य मुनि होकर सिद्ध हुआ हो, पर सिद्ध होने पर वहाँ उनमें परस्पर कोई भेद नहीं है। उसी सिद्ध लोक में रामचन्द्र भव का आत्मा भी विराजमान है। हनुमान आदिक का आत्मा भी विराजमान है और ऋषभदेव आदिक तीर्थंकरों का आत्मा भी विराजमान है। सब ज्ञान-ज्योति हैं। सब अनन्त आनन्दमय हैं। एक का दूसरे में कुछ भी अन्तर नहीं है। इस कारण यह जिज्ञासा हुई। सो सही रूप से, परमार्थ ढंग से तो उनमें अन्तर नहीं बताया जा सकता मगर कुछ अपेक्षा है जिससे वहाँ अन्तर बताया जाता है वह कौन सी अपेक्षा है उसके लिए सूत्र कहते हैं।

क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधित ज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥ १०–६ ॥

क्षेत्र की अपेक्षा सिद्धों का परिचय—क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकबुद्धबोधित, ज्ञान, अवगाहन, अन्तर, संख्या और अल्प बहुत्व। इस अपेक्षा से सिद्ध भगवान में विशेषता जानना चाहिए। यहाँ क्षेत्र की अपेक्षा उनका विशेष कैसे जाना जाता, सो कहते हैं। क्षेत्र तथा अन्य अपेक्षाभूत प्रज्ञापननय और प्रत्युत्पन्ननय इन दो दृष्टियों से विशेषता बतायी जायेगी अर्थात वर्तमान में इस अपेक्षा से क्या बात है और पूर्वकाल में इस अपेक्षा से क्या बात थी ? क्षेत्र की अपेक्षा वर्तमान दृष्टि से देखा जाए तो यह प्रश्न होगा कि वे किस क्षेत्र में विराजे हैं ? तो उसका उत्तर है कि वे सिद्ध क्षेत्र में विराजे हैं। इससे अधिक और गहरी दृष्टि से उत्तर दें तो वे अपने प्रदेशों में विराजे हैं। वहाँ आकाश का भी उत्तर न आयेगा, क्योंकि निश्चय दृष्टि से एक द्रव्य उस ही में निहारा जाता है। अन्य द्रव्य में नहीं देखा जाता हैं और जब भूत प्रज्ञापननय से उत्तर दिया जाये तो वहाँ भी दो दृष्टियों से उत्तर आयेगा। एक जन्म की दृष्टि से दूसरा कोई उपसर्ग करे, उठा ले जाये और कहीं पटक दे तो ऐसे संहरण की दृष्टि से। तो जन्म की दृष्टि से तो १५ कर्मभूमियों में उत्पन्न हुए मनुष्य सिद्ध होते हैं।। अब ऐसा कहने से भोगभूमिया छूट गए, समुद्र के स्थान छूट गए। यह तो हुआ जन्म

की अपेक्षा , पर संहरण दृष्टि से जवाब दिया जाये तब तो समस्त मनुष्यलोक से सिद्ध हुए हैं क्योंकि १५ कर्मभूमियों में उत्पन्न हुए इन पुरुषों को मुनि अवस्था में, साधना की स्थिति में कोई देव उठाकर ले जाये। समुद्र में पटक दे, अन्यत्र डाल दे तो ढाई द्वीप के अन्दर ही मनुष्यों की गति है। बाहर तो देव भी नहीं ले जा सकते। तो यों मनुष्य क्षेत्र से सब जगह से सिद्ध हुये। यहाँ एक प्रश्न हो सकता कि मेरु पर्वत के भीतर से कैसे गमन होगा? वहाँ के ऊपर का जो सिद्ध क्षेत्र है वह तो खाली होगा। वहाँ सिद्ध न होंगे, पर उत्तर यह है इसका कि मेरु पर्वत के भीतर के क्षेत्र से भी सिद्ध हुये हैं। बल्कि जो मेरु पर्वत की चोटी है वहाँ के प्रदेशों से भी सिद्ध हुये हैं। वे इस प्रकार हुये कि कोई मुनि ऋद्धि-धारी हुये कि वे किसी भी जगह प्रवेश कर जाते हैं। मेरु पर्वत के भीतर वे जा रहे हों और किसी भी जगह मेरु के बीच की जगह उनकी साधना और शुक्लध्यान बन जाये और वहीं से मुक्त हो जायें तो शरीर तो कपूरवत् उड़ ही जाता है जो मोक्ष जाता है, वे तो वहाँ से सिद्ध हो गये।

काल की अपेक्षा से सिद्धों का परिचय—यहाँ दो नयों की अपेक्षा बात चल रही है। एक तो वर्तमाननय, यह तो ऋजु सूत्रनय और शब्दों की दृष्टि से देखा जाता है और भूतनय से सभी नय का कथन कर सकते हैं। उन्हीं दोनों नयों से अब काल की अपेक्षा सिद्धों में विशेषता कहते हैं कि किस काल में मुक्ति होती है। वर्तमाननय से देखा जाये तो एक समय में ही सिद्ध होता हुआ सिद्ध हो जाता है। कर्ममुक्त होकर एक समय में ही वह सिद्ध क्षेत्र में विराजमान होता, तो मुक्त होने का, सिद्ध होने का समय एक है। भूत प्रज्ञापन नय से देखा जाये तो उसका भी उत्तर दो दृष्टियों से आयेगा। (१) जन्म की दृष्टि से और (२) संहरण की दृष्टि से। जन्म की अपेक्षा तो सामान्यतया यह उत्तर है कि उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में उत्पन्न हुये पुरुष सिद्ध होते हैं किन्तु उत्सर्पिणी के सारे समयों में नहीं होता और न अवसर्पिणी के सारे समयों में सिद्ध होता। तो विशेष की अपेक्षा इस प्रकार है कि अवसर्पिणी काल में तीसरे काल के अन्तिम भाग में और चौथे काल में उत्पन्न हुये सिद्ध होते हैं ओर चौथे काल में उत्पन्न पंचम काल के प्रारम्भ में भी सिद्ध हो जाते हैं, किन्तु पंचम काल में उत्पन्न हुआ किसी भी समय सिद्ध नहीं होता। तथा उक्त काल के अतिरिक्त अन्य कालों में सिद्ध नहीं होते। अवसर्पिणी काल में ६ काल होते हैं। पहले में उत्कृष्ट भोगभूमि, दूसरे में मध्यमभोगभूमि, तीसरे में जघन्य भोगभूमि है, चौथे में भले प्रकार मुक्त होना, पांचवें में कर्मभूमि। चौथा काल भी कर्मभूमि का है, पर पंचम काल में बहुकर्मता है तथा इस काल में उत्पन्न हुआ जीव मुक्त नहीं होता। छठं काल में बहुत बिगड़ी स्थिति होती है अग्नि, धर्म, ये कुछ नहीं होते। पशुवत जीवन होता है तो इनमें से चौथे काल में सिद्ध होते हैं। ऐसे ही उत्सर्पिणी काल में चौथे काल में सिद्ध होते हैं। संहरण की दृष्टि से सभी कालों में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में सिद्ध हो जाते हैं। इसका प्रयोजन यह है कि विदेह आदिक क्षेत्रों में कोई मुनिराज हैं और कोई देव उनको उठाकर उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के प्रथम काल में यहाँ भरत ऐरावत क्षेत्र में पटक गया, और वह मुक्त हो जाता है तो इस काल में सिद्ध हुये कहलाये।

गति की अपेक्षा से सिद्धों का परिचय—अब गति की अपेक्षा वर्णन करते हैं कि किस गति में सिद्ध होते हैं। वर्तमाननय की अपेक्षा तो यों ही कहो कि वे सिद्ध अवस्था में ही सिद्ध होते हैं, और भूतनय की अपेक्षा कहो तो वहाँ दो दृष्टियाँ होती हैं—एक तो अनन्तर गति और दूसरी एकान्तर गति अर्थात वे सीधे किस भव से मोक्ष गए ? एक तो इस प्रकार प्रश्न होगा। दूसरे जिस भव से वे मोक्ष गए उस भव से पहले उनका कौन भव था ? एक इस प्रकार प्रश्न होगा। तो अनन्तर गति की दृष्टि से

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रत्येक सिद्ध मनुष्यगति में ही सिद्ध हुये हैं अर्थात मनुष्य भव में मुनि निर्ग्रन्थ होकर श्रेणी माड़कर शुक्ल ध्यान के बल से आगे बढ़कर अरहंत होकर मोक्ष जाते हैं । एकान्तर गति की दृष्टि से चारों गतियों में उत्पन्न हुये सिद्ध होते हैं अर्थात नरक गति से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जाते हैं। तिर्यञ्च गति से निकलकर मनुष्य होकर सिद्धि पाते हैं, देवगति से चय कर मनुष्य होकर सिद्ध हो जाते हैं और मनुष्य गति से ही निकलकर पुनः मनुष्य होकर सिद्ध होते हैं।

लिंग की अपेक्षा से सिद्धों का परिचय—अब लिङ्ग की अपेक्षा बतलाते हैं कि किस लिङ्ग से सिद्ध होते हैं। लिङ्ग का अर्थ यहाँ वेद है। तो वर्तमाननय से देखा जाये तो अपगत वेद से सिद्ध है याने वेद नहीं है। अब वहाँ, इस प्रकार सिद्ध अवस्था है। और, भूत विषयक नय से देखा जाये तो तीनों वेदों से सिद्धि है, यह बात आती है। यद्यपि शरीर की अपेक्षा से तो पुरुष वेद से ही सिद्धि है, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद से नहीं हैं, किन्तु भाव वेद की दृष्टि से पुरुष वेद ९वें गुणस्थान तक चलता है। स्त्री वेद नपुंसक वेद भी ९वें गुणस्थान तक होते हैं। और छठे ७वें गुणस्थान से ही निर्ग्रन्थ दिगम्बर दशा होती है सो यह पुरुष ही भाव वेद की अपेक्षा कोई मुनि स्त्रीवेद में है, कोई नपुंसक वेद ये है, कोई पुरुष वेद आदि किसी में है, फिर ध्यान बल से उन वेदों से रहित होकर सिद्ध हो जाते हैं अथवा दूसरी तरह से परखिये लिङ्ग दो प्रकार का होता है। तो निर्ग्रन्थ लिङ्ग और सग्रन्थ लिङ्ग याने दिगम्बर अवस्था और श्रावक अवस्था। तो वर्तमान विषयकनय से तो निर्ग्रन्थलिंग से ही सिद्धि होती है। श्रावकलिङ्ग वस्त्रधारी लिङ्ग से सिद्धि नहीं होती पर भूतविषयकनय से देखा जाए तो सग्रन्थलिंग से सिद्धि है। श्रावक था, बाद में मुनि हुआ। और वह मोक्ष गया। अथवा नग्न अवस्था में ही जन्म से रहा और मुनि बन गया, सिद्ध हो गया। ८-९ वर्ष की उम्र तक कोई बालक मुनियों के पास अध्ययन कर रहा तो नग्न ही अध्ययन कर रहा, पश्चात् उसे आत्महित की प्रेरणा हुई और मुनि दीक्षा ले ली। तो लो ऐसे भी अनेक पुरुष सिद्ध हुये हैं कि जिन्होंने जन्म से कपड़े पहना ही नहीं।

तीर्थ की अपेक्षा से सिद्ध भगवन्तों का परिचय—अब तीर्थ की अपेक्षा सिद्ध का वर्णन करते हैं। जब तीर्थ की अपेक्षा वर्णन करेंगे तो वहाँ दोनों विकल्प होते हैं। तीर्थंकर के तीर्थ से मुक्त हुये हैं या उस तीर्थंकर के न होने पर सिद्ध हुये हैं। दूसरा वर्णन इस तरह से चलेगा कि ये तीर्थंकर होकर सिद्ध हुये हैं या तीर्थंकर हुये बिना सिद्ध हुये हैं ? तो कोई मुनि तीर्थंकर के सद्भाव में सिद्ध हुये हैं और कोई मुनि तीर्थंकर के अभाव में अर्थात तीर्थंकर हुये, अब नहीं हैं। वे मुक्त हो चुके. तो यों तीर्थंकर के अभाव में सिद्ध हुये, और तीर्थंकर होकर सिद्ध हुये ऐसे प्रत्येक उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल में ५ भरत और ५ ऐरावत क्षेत्रों से सिद्ध होते हैं और विदेह क्षेत्र में तो सदैव तीर्थंकर रहा करते हैं। चाहे कुछ नगरियों में रहें चाहे सब नगरियों में रहें पर २० से कम तीर्थंकर कभी नहीं रहते। वे तीर्थंकर होकर सिद्ध हुये। और अन्य अनेक मनुष्य त्रेसठ सलाका के पुरुषों में से अथवा साधारण पुरुषों में से अनेक सिद्ध हुये हैं। इस प्रकार तीर्थ की अपेक्षा वहाँ सिद्ध में अन्तर जानना चाहिए। यह बात पहले ही कह दी गई कि सिद्ध में परस्पर वास्तव में अन्तर नहीं है। भूतकाल में वे कहाँ से मुक्त हुये। कब मुक्त गए, किस स्थिति में मुक्त गए, इस अपेक्षा से उन सिद्धों का वर्णन किया जाता है, तीर्थ तीर्थंकर का तब तक कहलाता है जब तक कि दूसरा तीर्थंकर उत्पन्न न हो। इस अपेक्षा से भी तीर्थ में सिद्ध हुए हैं यह बात तो है ही पर जिन तीर्थंकरों के अन्तराल में इसके बाद अन्तर हो जाता है कि वहाँ धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति नहीं रह पाती। वहाँ तब सिद्ध होना भी नहीं होता, पर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कुचित किसी का ऐसा ही विशेष क्षयोपशम और थोड़ा पुराना सत्संग हो और रहे आये साधना में तो ऐसा कोई मुनि मुक्त हो जाए, यह भी सम्भव हो सकता है। इस प्रकार तीर्थ की दृष्टि से इन सिद्ध भगवन्तों में परस्पर विशेषता की बात कही गई है।

प्रत्येक बुद्धबोधित की दृष्टि से सिद्ध भगवन्तों का परिचय—प्रत्येक बुद्धबोधित की दृष्टि से सिद्ध भगवन्तों में भूतपूर्व न्याय से विशेषता समझी जाती है। कोई मनुष्य दूसरे के उपदेशों का लाभ पाये बिना अपनी ही बुद्धि से ज्ञान विशेष में आया और तपश्चरण करके मुक्त हो गया वह तो कहलाता है प्रत्येक बुद्ध सिद्ध और जो दूसरे का उपदेश पाकर उससे समझा गया और निर्ग्रन्थ दिगम्बर होकर तपश्चरण कर सिद्ध हुये वे कहलाते हैं बोधित बुद्ध सिद्ध। प्रत्येक बुद्ध बोधितों को जो विरक्ति बुद्धि उत्पन्न हुई सो कभी मेघपटलों को देखा, कोई मन्दिर के आकार में बने थे, थोड़ी देर को नीचे गए कागज पैन्सिल लेने, कि इस मन्दिर का चित्र बना लूं, आने पर देखा तो वह शिखर विघट गया। वह तो बादलों का आकार था, उसे ही देखकर विरक्त हो गए। तो उसमें दूसरे के उपदेश बिना अपने ही शक्ति से वह ज्ञान जगा। बोधित बुद्धों को जो कि बहुत काम भोग आदिक में आसक्त चित्त रहे वे दूसरों के द्वारा समझाया जाने पर काम भोग आदिक से विरक्त बने। उनकी यह बुद्धि परोपदेश पाकर जागृत हुई, ऐसे बोधित बुद्ध हुए हैं, प्रत्येक बुद्ध कुछ विशेष अतिशय वाले माने जाते हैं, जिनको ज्ञान अपने आप ही शक्ति से जगा, पर का उपदेश प्राप्त करने की आवश्यकता न हुई उनकी शक्ति विशेष समझिए, और जो समझाने से समझे, शक्ति उनके भी है, किन्तु समझाने से समझे इस कारण कुछ उनमें ज्ञान बल अपने आप नहीं जगा सो कुछ ये परोपदेशजज्ञान वाले समझे जाते हैं।

ज्ञान दृष्टि से सिद्ध भगवन्तों का परिचय- ज्ञान की अपेक्षा सिद्ध में क्या अन्तर है? तो वर्तमान में तो सिद्ध में कोई अन्तर नहीं। सिद्ध भी हुए हैं तो केवल ज्ञान से ही सब सिद्ध हुए हैं, पर भूतपूर्व न्याय से देखने पर यह विशेषता लगती है कि कोई दो ही ज्ञान विशेषों से सिद्ध बने, कोई तीन ज्ञान विशेषों से सिद्ध बने, कोई चार ज्ञान विशेषों से सिद्ध बने। जैसे किसी मुनि के मति ज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो ही ज्ञान थे और इसी ही में आराधना बनाया कि उनके केवलज्ञान हुआ और सिद्ध हो गए। कोई मुनिराज, मतिज्ञान श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान के धारी थे अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मनः पर्ययज्ञान के धारी थे और उनके तपश्चरण समाधि भाव बढ़ा, जिसके प्रताप से केवलज्ञान पाया और सिद्ध हो गए। यहां यह विशेष जानना कि केवलज्ञान जब होता है तब सिर्फ वही एक ज्ञान रहता है। केवलज्ञान के साथ अन्य मति आदिक ज्ञान नहीं होते, क्योंकि ज्ञानावरण के क्षय से ही तो केवलज्ञान हुआ, और ये चार ज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान हैं, सो केवलज्ञान होने पर वही एक ज्ञान रहता है। कोई मुनिराज चार ज्ञान के धारी थे—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान, सो इन चार ज्ञान के धारी मुनिराज तपश्चरण द्वारा केवलज्ञान पाकर मुक्त हुए, इस प्रकार भूतपूर्व न्याय की दृष्टि से ये चार ज्ञान के धारी सिद्ध हैं, ऐसा कहा जाता है।

अवगाहन की दृष्टि से सिद्ध भगवन्तों का परिचय - अवगाहन की दृष्टि से उन सिद्धों में क्या अन्तर है सो सुनो—अवगाहन तीन प्रकार से निरखा जाएगा—(१) उत्कृष्ट, (२) मध्यम और, (३) जघन्य। उत्कृष्ट अवगाहना तो एक ही होती है, जघन्य अवगाहना भी एक ही मिलेगी। मध्यम अवगाहना के अनेक भेद हो जाते हैं। यहाँ अवगाहना से मतलब आत्मप्रदेशों में रहना। सो आत्मप्रदेशों में यह रहना कितने विस्तार में है, उसकी दृष्टि से अवगाहना कही जा रही है। उत्कृष्ट अवगाहना तो

http://sahjanandvarnishastra.org/

५२२ धनुष की है। अवसर्पिणी काल के चतुर्थ काल के आदि में जो सिद्ध हुये हैं उनमें अनेक ऐसे हुये जो ५२५ धनुष की अवगाहना वाले थे। जघन्य अवगाहना है साढ़े तीन हाथ प्रमाण। चतुर्थ काल के अन्त में उत्पन्न हुए पंचम काल में जो मोक्ष गये ऐसे अनेक मुनि साढ़े तीन हाथ की अवगाहना वाले हो सकते हैं अथवा बाल्यावस्था में ही जिसे केवलज्ञान हो गया, ८-९ वर्ष की आयु में ही केवलज्ञानी जो बने हैं वे साढ़े तीन हाथ की अवगाहना वाले हो सकते हैं। तो अनेक सिद्ध साढ़े तीन हाथ की अवगाहना में हैं और अवगाहना के मध्यम विकल्प अनेक हैं, साढ़े तीन हाथ से कुछ ही बाद फिर और बाद ऐसे कुछ कुछ बड़े होकर जब तक ५२५ धनुष की आवगाहना है उससे पहले के ये अनेक भेद हो जाते हैं। वर्तमान में सिद्ध भगवान कितनी अवगाहना में हैं? तो जिस शरीर से मोक्ष गए उस आकार से कुछ न्यून आकार में हैं।

अन्तर की दृष्टि से सिद्ध भगवन्तों का परिचय—अब अन्तर की दृष्टि से सिद्ध भगवन्तों की विशेषता निरखिये। अन्तर का यहाँ अर्थ यह है कि एक सिद्ध भगवान बने उसके बाद कितने समय तक सिद्ध भगवान न बनना और बाद में बनेंगे तो एक सिद्ध से दूसरे सिद्ध के बीच में कितना काल बीत गया उसे अन्तर कहते हैं। यहाँ यह जानना कि अन्तर से ही सिद्ध हुये यह बात नहीं है, अनेक अनन्तर सिद्ध भी हैं याने लगातार सिद्ध बनते रहें, ऐसा भी कुछ समय आता है। तो अनन्तर की दृष्टि से जघन्य रूप से तो दो समय सिद्ध होते हैं पहले समय में सिद्ध हुये, अगले में सिद्ध हुये। अगर वे तीसरे समय और सिद्ध हो जायें तो वे जघन्य न कहलायेंगे, अनन्तर और उत्कृष्ट अनन्तर की दृष्टि से ८ समय तक सिद्ध होते हैं। जब कभी ६ महीने तक का अन्तर पड़ जाये कि कोई सिद्ध नहीं हो रहा सारे ढाई द्वीप में, उसके बाद ८ समय तक लगातार सिद्ध होते हैं और ६०८ सिद्ध हो जाते हैं तो वे ८ समय लगातार सिद्ध हुये हैं तो अनन्तर सिद्ध का उत्कृष्ट समय ८ है, फिर ८ और ८ के बीच में जो समय लगे वह सब मध्यम अनन्तर है। अन्तर की दृष्टि से जघन्य अन्तर तो एक समय पड़ता है। कोई अभी सिद्ध भगवान हुआ, एक समय को नहीं हुआ, फिर सिद्ध हुआ तो यह अन्तर एक समय का रहा और ज्यादह अन्तर पड़ा कि कोई सिद्ध नहीं हुआ तो वह अन्तर का समय ६ माह तक हो जाता है।

एक समय में सिद्ध होने की संख्या की दृष्टि से सिद्ध भगवन्तों का परिचय—अब संख्या की दृष्टि से सिद्ध भगवन्तों में विशेषता देखिये इस संख्या से मतलब यह है कि कितने सिद्ध हो जाते हैं। तो एक समय में कितने सिद्ध होते हैं यह बात बताने का प्रयोजन है इस संख्या का अनुयोग। तो एक समय में जीव जघन्य से तो एक सिद्ध हुआ अर्थात किसी एक समय में केवलज्ञानी ही सिद्ध भगवान बना तो वह एक समय की जघन्य संख्या है, और अधिक से अधिक कितने सिद्ध हो जायेंगे एक समय में? उनकी संख्या है १०८। जब ६ माह का अन्तर पड़ता है और उसके बाद सिद्ध होना प्रारम्भ हुआ तो वहाँ पहले समय में कम सिद्ध हुये, दूसरे समय में अधिक संख्या में सिद्ध हुये, ऐसी उस धारा में ८वें समय में सिद्ध की संख्या १०८ हो जाती है। तो ऐसे ही समझना कि किसी भी एक समय में अधिक से अधिक १०८ मुनि महाराज अरहंत देव सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। वैसे सिद्ध भगवंतों की समस्त संख्या अनंत है। करणानुयोग में बताया गया है कि निगोद जीवों को जोड़कर जितने भी संसारी जीव हैं। उन सब जीवों से अनंत गुने सिद्ध भगवंत हैं। तो अनंत सिद्ध होने पर भी वे सब सिद्ध एक निगोद के शरीर में पाये जाने वाले जीव के अनंतवें भाग प्रमाण हैं पर यहां सिद्ध होने की संख्या कही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जा रही है। उस अपेक्षा से बताया गया कि एक समय में होने वाली संख्या जघन्य से एक है। उत्कर्ष से १०८ है। अब अल्प बहुत्व की दृष्टि से सिद्ध भगवन्तों का विशेष परिचय सुनो—अल्प-बहुत्वगत अनेक बातें सामने रख कर यह बताते कि यह इससे अधिक है यह इससे अधिक है। तो पहले क्षेत्र की दृष्टि से सिद्ध भगवन्तों का वर्णन।

क्षेत्र सम्बन्धित अल्प बहुत्व की दृष्टि से सिद्ध भगवन्तों का परिचय—अब क्षेत्र की अपेक्षा अल्प बहुत्व देखिये—वर्तमाननय से तो सभी सिद्ध क्षेत्र में ही सिद्ध हैं। वहाँ तो अल्प बहुत्व कुछ नहीं बताया जा सकता, पर भूतपूर्वनय की अपेक्षा विचार किया जाय तो क्षेत्रसिद्ध दो प्रकार के होते हैं—(१) जन्म की अपेक्षा और (२) हरे जाने की अपेक्षा। तो उनमें संहरण सहित तो अल्प हैं। अर्थात जिन मुनियों को देव आदिक ने हरा, उठा ले गये और कहीं का कहीं रख दिया और वहाँ से सिद्ध हुए तो ऐसे संहरणसिद्ध तो थोड़े हैं और जन्मसिद्ध उनसे संख्यातगुने हैं। संहरण भी २ प्रकार से होता है—(१) एक तो अपने आप और (२) दूसरा दूसरों के द्वारा। अपने आप के संहरण का क्या अर्थ है? क्या कोई खुद का भी हरण कर लेता है? तो संहरण का अर्थ है कि जन्म तो हुआ किसी क्षेत्र में और ऋद्धिबल से अन्यत्र चले जाते और कहीं अन्यत्र ही वहाँ ध्यान बना, केवलज्ञान हुआ, और सिद्ध हो गये तो उसे कह सकते कि ऋद्धियाँ उनको हरकर ले गईं। यों स्वकृत संहरण की बात कही गई है। पर-कृत संहरण का अर्थ यह है कि देवने या विद्याधरों ने हरण किया और कहीं दूसरी जगह रख दिया और वहाँ ही सिद्ध हो गये तो यह परकृत संहरण है। सो दोनों ही तरह के संहरणों से जो सिद्ध हुए हैं वे जन्मदृष्टि से होने वाले सिद्धों से कम हैं। अब क्षेत्र का विभाग देखिये—और उनमें अन्तर परखिये तो क्षेत्र का विभाग ७ प्रकार से रखिये—कर्मभूमि का क्षेत्र, भोगभूमि का क्षेत्र, समुद्र, द्वीप, ऊपर नीचे और तिरछे। अब इन ७ में से ऊर्द्धलोक से जो सिद्ध हुए हैं वे सबसे थोड़े हैं। ऊर्द्धलोक से मतलब यहाँ स्वर्ग से नहीं है। किन्तु यहाँ ही ऊपर से, अधोलोक से जो सिद्ध हुए हैं उनसे संख्यातगुने हैं। यहाँ अधोलोक से मतलब इन नारकादिक से नहीं है, किंतु इस जमीन से नीचे मेरुपर्वत की जड़ तक मध्यलोक कहलाता है। और यहाँ की दृष्टि से वे नीचे हैं तो वहाँ से कोई सिद्ध हुए हों वे अधोलोक सिद्ध कह-लाते हैं। वे ऊर्द्धलोक सिद्ध से संख्यातगुने हैं। तिर्यक लोक से जो सिद्ध हैं वे संख्यातगुने हैं। अब समुद्र और द्वीपों की अपेक्षा देखिये—समुद्र से जो सिद्ध हुए हैं वे द्वीपसिद्ध से कम हैं, द्वीपों से जो सिद्ध हुए हैं वे समुद्र सिद्ध से संख्यातगुने हैं। अब इन्हीं द्वीप समुद्रों में कुछ विशेष भेद बनाकर इनका अन्तर समझिये। लवण समुद्र से जो सिद्ध हुए हैं वे इनमें सबसे थोड़े हैं। कोई देवादिक हर ले गया और समुद्र में जाकर पटक दिया और वहीं ही ध्यान किसी मुनि का बना, केवलज्ञान हुआ और सिद्ध भगवान बन गये तो ऐसे लवण समुद्र से हुए सिद्ध सबसे थोड़े हैं। उनसे संख्यातगुने कालोद समुद्र से हुए सिद्ध हैं। उनसे संख्यातगुने जम्बूद्वीप से हुये सिद्ध हैं। धातकी खण्ड के दूसरे द्वीप से जो सिद्ध हुए हैं वे जम्बूद्वीपसिद्ध से संख्यातगुने हैं। पुष्करार्द्ध द्वीप से अर्थात पुष्कर द्वीप नाम के तीसरे द्वीप के आधे भीतर भाग से जो सिद्ध हुये हैं वे दूसरे द्वीप से होने वाले सिद्ध से संख्यातगुने हैं।

काल सम्बन्धित अल्पबहुत्व की दृष्टि से सिद्ध भगवन्तों का परिचय—अब काल की दृष्टि से सिद्ध में विशेषता देखिये—काल को ३ भागों में बाँटिये—(१) उत्सर्पिणी (२) अवसर्पिणी और (३) दोनों से रहित। सबसे कम सिद्ध हुए हैं उत्सर्पिणी काल से। इन तीनों की अपेक्षा से बात कही जा रही है। उससे अधिक सिद्ध हुए हैं अवसर्पिणी काल से। यहाँ जो इतना अन्तर मिला है उसका कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह है कि उत्सर्पिणी काल में तो पंचमकाल के बाद चौथा काल आया, सो चौथे काल में सिद्ध होने की वृत्ति कम रही, वहाँ उत्पन्न हों, उसके बाद सिद्ध हों और पञ्चमकाल जैसे हीन काल के बाद तपश्चरण दीक्षा आदिक का क्रम चला और फिर उस चतुर्थकाल के बाद भोगभूमि लग जायेगी । तो इन सब कारणों से उत्सर्पिणी काल में हुए सिद्ध कम हैं। किंतु अवसर्पिणी काल में तीसरे काल के बाद चौथा काल आता है। जहाँ बड़ी आयु का शरीर, बुद्धि भी एकदम विशेष याने योग्यता विशेष रहती है वहाँ सो तीसरे काल के अन्त में ही उत्पन्न हुये जीव सिद्ध होने लगते हैं। तो वह भी काल बहुत बड़ा है, फिर सारे समस्त चतुर्थ काल में सिद्ध हुये हैं। और चतुर्थ काल में उत्पन्न हुये पंचमकाल में भी सिद्ध हुये हैं। इससे अवसर्पिणी काल में जो सिद्ध हुये उनकी संख्या अधिक है। इससे संख्यातगुना दोनों से रहित काल में है। जहाँ न उत्सर्पिणी काल है न अवसर्पिणी काल है ऐसा क्षेत्र है विदेह। वहाँ से जो सिद्ध हुये हैं वे सबसे अधिक हैं।

गति सम्बन्धित अल्प बहुत्व की दृष्टि से सिद्ध भगवन्तों का परिचय—अब गति की दृष्टि से इनका अन्तर समझिये—ये सब अन्तर भूतपूर्वनय से हैं। वर्तमाननय से नहीं। वर्तमाननय से तो १ अवगाहन का तो अन्तर हो सकता है, पर और अन्तर नहीं है। भूतपूर्वनय से गति को देखें तो २ दृष्टियों से देखा जायेगा। अनन्तरगति और एकान्तरगति। तो अनन्तर गति दृष्टि से तो सभीसिद्ध मनुष्यगति में ही हुए हैं। वहाँ अल्प बहुत्व नहीं कहा जा सकता। एकांतर गति से अल्प बहुत बनेगा। जैसे कोई जीव तिर्यकगति से मनुष्य होकर मोक्ष गया तो ऐसे इन सबमें कम जीव हैं। उनसे संख्यातगुने वे सिद्ध हैं जो मनुष्यगति से आकर मनुष्य होकर मोक्ष गये हैं। उनसे संख्यातगुने वे सिद्ध हैं जो नरक गति से आकर मनुष्य होकर मोक्ष गये हैं, और उनसे संख्यातगुने वे सिद्ध हैं जो देवगति से आकर मनुष्य होकर मोक्ष गए हैं। इस प्रकरण से यह बात प्रसिद्ध होती है कि सिद्ध के बहुभाग में संख्या देव जीव की है, जो देवगति से चलकर मनुष्य होकर मुक्त हुए हैं। लगता भी यही भला है। जो जीव सिद्ध बनेगा वह खोटी गति से आकर मनुष्य होकर सिद्ध हो यह अधिकतर न हो पायेगा। हाँ देव गति से आकर मनुष्य होकर सिद्ध हुये हैं, उनके बाद दूसरा नम्बर उन सिद्धों का है जो मनुष्यगति से आकर मनुष्य होकर सिद्ध हुये थे। जो सिद्ध होंगे उन आत्माओं के पुण्य प्रताप विशेष रहा करता है पहले से ही। और उस पुण्य प्रताप से यही बात अधिकतर होती है कि कोई भव्य जीव किसी देव गति में जाये और वहाँ से चलकर मनुष्य होकर मोक्ष पाये। तीर्थंकरों की भी इससे अधिक संख्या है कि जो देवगति से आकर मनुष्य तीर्थंकर हुए हैं। इस प्रकार गति की अपेक्षा सिद्ध में विशेषता कही है।

लिंग तीर्थ व चारित्र की दृष्टि से सिद्ध भगवन्तों का परिचय—लिङ्ग की अपेक्षा से वर्तमान में तो कोई लिङ्ग है ही नहीं, इस कारण अपगत वेद की दृष्टि से सिद्ध में कोई अल्प बहुत्व नहीं है। भूतनय की अपेक्षा नपुंसक वेद से श्रेणी चढ़कर सिद्ध होने वाले अल्प हैं, उनसे संख्यातगुने स्त्रीवेद से श्रेणी चढ़कर होने वाले सिद्ध हैं और उनसे संख्यातगुने पुरुष वेद से श्रेणी चढ़कर सिद्ध हुए वे सबसे अधिक हैं। तीर्थ की अपेक्षा तीर्थंकर सिद्ध थोड़े हैं अर्थात जो तीर्थंकर होकर सिद्ध हुए उनकी संख्या अल्प है। और जो तीर्थंकर न होकर सिद्ध हुये हैं उनकी संख्या संख्यातगुनी है। चारित्र की अपेक्षा वर्तमाननय से तो न चारित्र न अचारित्र किंतु सबसे रहित स्थिति में सिद्ध हुये हैं, इसलिये वहाँ इनका अल्प बहुत्व नहीं। भूतनय की अपेक्षा दो तरह से सोचा जायेगा। एक अनन्तर की दृष्टि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

से और एक व्यवधान की दृष्टि से। अनन्तर चारित्र की दृष्टि से तो सभी जीव यथाख्यात चारित्र वाले ही सिद्ध हुये हैं इसलिए अनन्तर चारित्र की दृष्टि से उनमें अल्प बहुत्व नहीं होता, किन्तु व्यवधान की दृष्टि से भूतनय से उनमें अन्तर है, पाँचों ही चारित्र धारण करके सिद्ध होने वाले सिद्ध थोड़े हैं, अर्थात जिन जीवों के सामायिक छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय, यथाख्यात चारित्र पाँचों ही चारित्र हुये हैं और सिद्ध होते हैं, ऐसे सिद्ध अल्प हैं, और जो चार चारित्र से सिद्ध हुये हैं वे संख्यातगुने हैं अर्थात जिनके परिहार विशुद्धि नहीं हुआ और शेष चारित्र पाकर मोक्ष गए वे अधिक हैं। चार से कम चारित्र से सिद्ध होते ही नहीं। सामायिक छेदोपस्थापना होना अति आवश्यक है, और जब यह चारित्र में बढ़ते हैं तो सूक्ष्म साम्पराय चारित्र भी जरूर होता है और यथाख्यात चारित्र पाये बिना तो उनको मुक्ति ही नहीं है। सो चार चारित्र से जो सिद्ध हुये हैं उनकी संख्या अधिक है।

प्रत्येक बुद्ध बोधित और ज्ञान की दृष्टि से सिद्ध भगवन्तों का परिचय—प्रत्येक बुद्ध बोधित की दृष्टि से प्रत्येक बुद्ध अल्प हैं अर्थात जिन मुनियों को दूसरों के उपदेश के बिना स्वयं अपनी शक्ति से ज्ञान वैराग्य जगा है और वे सिद्ध हुये ऐसे सिद्ध थोड़े हैं और उनसे संख्यातगुने बोधितबुद्ध सिद्ध हैं, अर्थात दूसरों के उपदेश को पाकर जिनका ज्ञान वैराग्य जगा और तपश्चरण कर सिद्ध हुये हैं ऐसे सिद्ध संख्यातगुने हैं। ज्ञानानुयोग में वर्तमाननय की दृष्टि से देखा जाये तो सभी केवलज्ञान ज्ञान में हो सिद्ध हैं। इसलिए उनके अल्प बहुत्व नहीं है कि ये केवली कम हैं या ये ज्यादह हैं? सभी केवलज्ञानी हैं। हाँ पूर्व भाव की दृष्टि से देखा जाये तो वहाँ यह देखना होगा कि कौन मुनि कितने ज्ञान वाले थे और वे तपश्चरण कर सिद्ध हुये हैं तो कोई दो ज्ञान पाकर सिद्ध हुये हैं कोई चार ज्ञान पाकर सिद्ध हुये, कोई तीन ज्ञान पाकर सिद्ध हुये। यहाँ केवलज्ञान को नहीं कहा जा रहा। केवलज्ञान से तो सिद्ध होते ही हैं, उसकी बात पहले कह दी है, पर शेष बचे जो चार ज्ञान हैं उनकी चर्चा चल रही है। जो केवल दो ज्ञान पाकर केवली होकर सिद्ध हुये हैं वे सबसे थोड़े हैं, उनसे संख्यातगुने चार ज्ञान पाकर, केवली होकर होने वाले सिद्ध हैं उनसे संख्यातगुने तीन ज्ञान पाकर श्रेणी में चढ़कर केवली होकर सिद्ध हुये हैं। जो दो ज्ञान से सिद्ध हुये हैं वे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान हैं, जो चार ज्ञान से सिद्ध हैं वे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान से सिद्ध हुये हैं वे या तो मति, श्रुत, मनः पर्यय से बढ़कर हुये हैं या मति, श्रुत, अवधि से बढ़कर हुये हैं। इन सबको अगर विशेष दृष्टि से अल्प बहुत्व में देखा जाये तो सबसे कम है मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान इन तीन ज्ञानों को पाकर होने वाले सिद्ध। उनसे संख्यातगुना हैं मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से होने वाले सिद्ध। उनसे संख्यातगुने हैं मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान इन चार ज्ञानों से होने वाले केवली। और सबसे अधिक हैं मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान से होने वाले सिद्ध। इस विशेष में और पहले कहे गये सामान्य में यों विरोध नहीं है कि पहले तीन ज्ञानों से सिद्ध होने वालों को बात कही थी, अब वे तीन ज्ञान कौन से हैं? सो वे दो विकल्प वाले हैं इसलिए यह विशेष बताना पड़ा।

अवगाहना अन्तर व संख्या की दृष्टि से सिद्ध भगवन्तों का परिचय—अवगाहना की दृष्टि से सबसे कम जघन्य अवगाहना से होने वाले सिद्ध हैं। उनसे संख्यातगुने उत्कृष्ट अवगाहना से होने वाले सिद्ध हैं और उनसे संख्यातगुने मध्य की अवगाहना से होने वाले सिद्ध हैं। उस मध्य में भी यवमध्यसिद्ध उत्कृष्ट अवगाहना से होने वाले सिद्ध से संख्यातगुने हैं। उनसे संख्यातगुने हैं नीचे के यवमध्य सिद्ध, उनसे संख्यातगुने हैं ऊपर के यवमध्य सिद्ध। यव के आकार में एक रचना बतायी जाती है, उसमें संकेत

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहता है नीचे मध्य और ऊपर के यव के। उसके अनुसार इनकी संख्या कही गई है। अन्तर की दृष्टि से अन्तर व अनन्तर दो दृष्टियों से परखा जावेगा। अनन्तर की दृष्टि से वे सिद्ध सबसे कम हैं जो ८वें समय के अनन्तर सिद्ध हुये हैं। यदि ६ महीने तक कोई सिद्ध न हो तो ८ समयों में ६०८ सिद्ध हो जाते हैं। तो ऐसे कभी ८ समय में सिद्ध हुये हैं तो उसके बाद सिद्ध होने का नम्बर बहुत समय तक नहीं आ पाता है, और कोई ८ समय के बाद ही सिद्ध हुये हैं तो बहुत कम हैं। उससे संख्यातगुने ७ समयों के अनन्तर होने वाले सिद्ध हैं। जैसे कि ८ समयों में ६०८ जीव बताये हैं, उनमें से यह ७वाँ समय कहा जा रहा है और उसके बाद जो सिद्ध हैं याने ८वें समय में जो सिद्ध हुये हैं वे संख्यातगुने हैं ही। इस प्रकार छठवें समय के अनन्तर होने वाले सिद्ध संख्यातगुने हैं, ऐसा घटित कर कर दो समय तक जानना चाहिये। यह तो अनन्तर सिद्ध की बात कही गई है। अब अन्तर सिद्ध का बात सुनो, अर्थात बीच में कुछ समय का अन्तर देकर जो सिद्ध हुये हैं उनकी चर्चा सुनिये - ६ माह के अन्तर से जो सिद्ध होते हैं वे सबसे कम हैं। उससे संख्यातगुने एक समय के अन्तर से होने वाले सिद्ध हैं। उनसे संख्यातगुने भव-मध्य के अन्तर से होने वाले सिद्ध हैं, उनसे संख्यातगुने नीचे के भवमध्य के अन्तर से होने वाले सिद्ध हैं। उनसे विशेष अधिक ऊपर के भवमध्य के अन्तर से होने वाले सिद्ध हैं। अब संख्या की दृष्टि से सिद्धों में अल्प बहुत निरखिये इस संख्या से प्रयोजन यह है कि एक समय में कितने जीव सिद्ध होते हैं? तो एक समय में १०८ सिद्ध होने वाले सबसे कम हैं। अर्थात यह मौका कभी-कभी आता है कि ६ महीने का अन्तर पड़े और जीव ८ समय में मुक्त जायें, उनमें १०८ सिद्ध ८वें समय में जाते यह ऐसा अवसर बहुत कम हाता है, इस कारण एक ही समय में १०८ सिद्ध हुये हों, ऐसे मिलकर जितने भी सिद्ध हैं वे सबसे कम हैं। फिर १०८ से लेकर ५० तक जो एक समय में सिद्ध हुआ करते हैं वे उनसे अनन्तगुने हैं और ४६ से २५ तक होने वाले सिद्ध असंख्यातगुने हैं और २४ से १ तक सिद्ध होने वाले संख्यातगुने हैं, इस प्रकार क्षेत्र, काल आदिक अनुयोगों में अल्प बहुत्व बताया गया है।

चार घातिया कर्मों के विप्रमोक्ष से आर्हत अवस्था का लाभ – इस दशम अध्याय में मुख्यतया यह बात बतायी गई है कि तत्व का परिज्ञान करके विरक्त आत्मा जब आश्रव से रहित हो जाता तो नवीन कर्म संतति तो आयेगी नहीं और इसी सम्वर निर्जरा के कारणों से पूर्व के उपार्जित कर्मों का क्षय होता जाता है। तो एक समय वह आता है कि संसार का बीजभूत मोहनीय कर्म पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है। मोहनीय के नाश हुये बाद जिसका कि पूर्ण विनाश १०वें गुणस्थान में है उसके पश्चात् १२वें गुणस्थान में आकर अन्तराय ज्ञानावरण और दर्शनावरण ये तीनों कर्म एक साथ नष्ट होते हैं। सो मोहनीय के क्षय होते ही शेष घातिया कर्म नष्ट हो गये। इसके अनन्तर ही वे केवली भगवान हो जाते हैं, उनके चार घातिया कर्म नहीं हैं, यथाख्यात संयम है। मूल कोई बन्धन रहा नहीं, परमेश्वर है और परिपूर्ण ज्ञान में स्नान किये हुये है। यद्यपि उनके शेष अघातिया कर्म का उदय है तो भी ये परिपूर्ण हैं शुद्ध हैं, सर्वज्ञ हैं, अठारह प्रकार के दोषों से रहित हैं, ये जिनेन्द्र कहलाते हैं।

अघातिया कर्मों का क्षय होते ही निर्वाण लाभ व लोकान्त तक पहुंच अरहंत भगवान शेष अघातिया कर्मों का क्षय होने पर निर्वाण को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे जली हुई अग्नि यदि ईंधन आदिक उपादान न रहे तो वह बुझ जाती है ऐसे ही वे अघातिया कर्म उनके पनपने का अब कोई भाव न रहा तो वे नष्ट हो जाते हैं, और सर्व कर्मों के नष्ट होते ही वे निर्वाण को प्राप्त होते हैं। जैसे बीज जल जाये, खाक हो जाये तो क्या उस बीज से अंकुर उत्पन्न हो सकता? नहीं हो सकता, इसी प्रकार कर्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बीज के जल जाने पर क्या संसाररूपी अंकुर उत्पन्न हो सकता ? नहीं हो सकता। सो जैसे ही अष्ट कर्म नष्ट हुये कि ऊर्द्ध गमन स्वभाव के कारण ये सिद्ध भगवान लोक के अन्त तक गमन करके पहुंच जाते हैं, और उसमें कारण बताया गया है पूर्व का प्रयोग, संग से रहित होना, बन्धन का छेद हो जाना और ऊर्द्ध गमन का स्वभाव रहना, इसके लिये चार उदाहरण बताये गये हैं, जिससे यह सिद्ध है कि सिद्ध भगवान निर्लेप होने स, बन्धन रहित होने से अथवा ऊर्द्ध गमन स्वभाव से ऊपर ही जाकर लोक के अन्त तक पहुंचते हैं, वहां विराजमान रहते हैं। संसार में जो टेढ़ी तिरछी गतियाँ देखी जा रही हैं ये आयु कर्म से प्रेरित होने से हो रही हैं। कर्म दूर होने पर ऊर्द्ध गमन ही होता है, जैसे परमाणु में भी तो लोक के अन्त तक पहुंचने की शक्ति होती है, गति भी होती है। तो वह परमाणु जब अकेला रह गया तब उसमें इतनी शक्ति प्रकट हुई है, ऐसे हा यह जीव जब तक कर्म और शरीर के बन्धन में था तब तक तो यह गौरव युक्त था, संसार में सलता था। जहाँ यह कर्म और शरीर का संबंध छूटा और एक परमाणु की तरह अकेला ही रह गया तो इस मुक्त जीव में भी ऊर्द्ध गमन की बात बनती है।

कृत्स्न कर्म विप्रमोक्ष होते ही परमात्मा का ऊर्ध्वगमन से सिद्ध शिला—कर्म का विनाश पहले हुआ या निर्वाण पहले हुआ ? यद्यपि कहने में ऐसा आता है कि कर्म का विनाश पहले हुआ, निर्वाण बाद में हुआ, पर यथार्थतया कर्म का विनाश जिस समय हुआ उसी समय निर्वाण कहलाया। जैसे प्रकाश उत्पन्न हुआ और अन्धकार नष्ट हुआ, तो उनमें पहले क्या हुआ ? क्या प्रकाश पहले पैदा हुआ फिर अन्धकार नष्ट हुआ या अन्धकार पहले नष्ट हुआ, प्रकाश बाद में हुआ? कहने में ऐसा ही आयेगा कि प्रकाश पहले हुआ, अन्धकार बाद में नष्ट हुआ, पर यथार्थतया जो उसका समय प्रकाश होने का है वही समय अन्धकार के नष्ट होने का है। ऐसे ही जो समय निर्वाण होने का है वही समय कर्म के विनाश का है। इस ढाई द्वीप के ऊपर लोक के शिखर पर अतीव मनोज्ञ सुरभित पवित्र देदीप्यमान प्रागभारा नाम की पृथ्वी है, जिसका दूसरा नाम सिद्धशिला है, इस पर सिद्ध नहीं विराजे होते, किन्तु इस ही की सीध में थोड़े ही ऊपर तनु वातवलय में सिद्ध भगवन्त विराजे हैं, सो सिद्ध भगवान के स्थान से नीचे सबसे पहले यह प्रागभारा पृथ्वी आती है। इसका दूसरा नाम अष्टम भू है ८वीं पृथ्वी। यह मनुष्य लोक के बराबर विस्तार वाली है। जितना ढाई द्वीप का क्षेत्र है उतना ही विस्तार इस ८वीं पृथ्वी का है। शुभ है, शुक्ल वर्ण है और के छत्र समान इसका आकार है। इस पृथ्वी से ऊपर सिद्ध विराजे होते हैं, जो कि इस पृथ्वी से अन्तर पाकर विराजे हैं। ये सिद्ध भगवान केवलज्ञान, केवलदर्शन, सम्यक्त्व और सिद्धपना इनसे युक्त है और अब इनका क्रिया नहीं होता, ये अनन्त काल के लिये निष्क्रिय हो गये। सिद्ध भगवन्तों का इस लोक के बाहर क्यों गमन नहीं है इसके लिये सूत्र बताया गया है कि धर्मास्तिकायाभावात् चूंकि लोक से बाहर धर्मास्तिकाय का अभाव है इस कारण है इस कारण यहीं तक गति है। यद्यपि समस्त द्रव्य अपनी-अपनी स्वतन्त्र सत्ता से अपने में परिणमन करते हैं, पर यह निमित्त नैमित्तिक भाव संसार में स्पष्ट दिख रहा है। उस निमित्त को पाकर उपादान अपनी योग्यता से अपने आप में परिणति करता है।

सिद्धों के अविनाशी अनन्त आनन्द की निरूपमता जो बात नवीन हो पहिले से विलक्षण हो उसमें कोई निमित्त कारण अवश्य होता। सिद्ध सुख अविनाशी है। विषयों से अतीत है, उत्कृष्ट है। वहाँ विषय वेदना रंच नहीं है। पूर्ण निराकुलता है, इस कारण कर्म और क्लेश के मोक्ष होने से मोक्ष का सुख अनुपम कहलाता है। कोई दार्शनिक इस सुख को सुषुप्त अवस्था के

http://sahjanandvarnishastra.org/

समान मानते हैं। जैसे कोई मनुष्य सोया हुआ है, अचेत है, उसके विकल्प नहीं जग रहे हैं। ऐसे ही सिद्ध भगवान के सुख को समझते हैं। सोये हुए को जैसे कोई दुःख नहीं है। पर इनका कहना यह ठाक नहीं है, क्योंकि सोई हुई अवस्था में दर्शनावरण कर्म के उदय से एक ऐसी बेहोशा जैसी दशा हुई है और वह तो मोह के विकार रूप है। वहाँ सुख नहों कहा जा सकता और कितने ही लोग तो सोये हुए की स्थिति में ही दुःखी होते हैं। स्वप्न निरखते हैं। पर सिद्ध भगवन्तों में तो उत्कृष्ट परम आत्मीय आह्लाद है। निराकुल स्थिति है। संसार में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जिससे सिद्ध भगवन्तों के सुख की उपमा दी जाए। न उनके सुख का अनुमान किया जा सकता हो, न उनके सुख का कोई चिह्न दिखाकर बताया जा सकता। उनका सुख तो निरूपम है। ये भगवान अरहन्त देव के वचन हैं। और हम आप सब छद्मस्थ अरहन्तों के वचन प्रामाण्य से उनके अस्तित्व को समझते हैं और भीतर अनुभव से भी हम सिद्ध भगवन्त का परिचय पाते हैं। इस प्रकार इस दशम अध्याय में मोक्षतत्त्व का वर्णन किया। अब इस सम्पूर्ण मोक्ष शास्त्र में किस तत्त्व का प्रारम्भ किया था और किस तरह ये निर्वाण को प्राप्त होते हैं, उसका प्रायोजनिक वर्णन संक्षेप में किया जा रहा है।

तत्त्वार्थ सूत्र ग्रंथराज में संसार-संकटों से छुटकारा पाने के मार्ग का दिग्दर्शन—इस ग्रंथ में संसार के संकटों से सदा के लिए छुटकारा पाने का मार्ग बताया गया है, वह मार्ग है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का एकत्व होना। सम्यग्दर्शन का अर्थ है—जीवादिक ७ पदार्थों का सही श्रद्धान होना, सहज आत्मस्वरूप का अनुभव पूर्वक प्रतीति होना। सम्यग्ज्ञान का अर्थ है—जो पदार्थ जिस रूप से अवस्थित है उसको उसी रूप से जानना। सम्यक्चारित्र का अर्थ है—निज सहज आत्म स्वरूप में उपयोग का मग्न होना। तो यह जीवनिसर्गज अथवा अधिगमज इन दो सम्यक्दर्शनों में से किसी प्रकार का सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। जिसमें शंका आदिक कोई दोष नहीं होते। प्रशम संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य की जहाँ अभिव्यक्ति होती है। ऐसे विशुद्ध सम्यग्दर्शन की उपलब्धि से ज्ञान भी निर्मल होता है। यों सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान दोनों को यह जीव एक साथ प्राप्त कर लेता है। सम्यग्दर्शन द्वारा यह आत्मा निक्षेप, प्रमाण, निर्देश सत् संख्या आदिक उपायों से जीव के भावों को जानता है, जो भाव ५ प्रकार के कहे गए—(१) औदयिक (२) औपशमिक (३) क्षायिक (४) क्षायोपशमिक (५) पारिणामिक। इनको जान कर औदयिक आदिक भावों के आश्रयभूत चेतन अचेतन भोगों के साधनों का परिहार करता है।

सम्यग्ज्ञानी का वैराग्य में वृद्धि हो होकर अन्त में संकट मुक्त होकर निर्वाण—इस सम्यग्ज्ञानी के ज्ञान में यह बात स्पष्ट बसी है कि ये समस्त भोग साधन उत्पन्न होते, विलीन हाते, स्थिर नहीं रहते। अतः वे सभी भोग साधनों से विरक्त रहते हैं। इनके किसी भी बाह्य पदार्थ के विषय में तृष्णा नहीं जगती। ये ३ गुप्तियों से सुरक्षित रहते हैं। पंच समितियों का पालन करते हैं। इस लक्षण धर्म का धारण करते हैं, और धर्म के फल तीर्थंकर आदिक के देख लिए जाने से वे निर्वाण की प्राप्ति के उपाय में प्रयोगात्मक विशिष्ट दृढ़ होते हैं। इनका श्रद्धा सम्वेग भावना प्रबल रहती है। अनुप्रेक्षाओं के द्वारा ये अपने चित्त को स्थिर करते हैं। ऐसा ये संवरस्वरूप आत्मस्वभाव के आश्रय से निराश्रव होते हैं अर्थात नवीन कर्म का आश्रव नहीं आता, ये साधु परीषहों के जय से अन्तरङ्ग बहिरङ्ग तपश्चरणों के अनुष्ठान से यह पूर्व उपार्जित कर्मों की निर्जरा करता रहता है। सामायिक छेदोपस्थापना चारित्र को धारण करना इसी की ही वृद्धि के फल में सूक्ष्मसंवरण चारित्र प्राप्त करना होता है। यह संयम में

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है। और पुलाक आदिक मुनिजनों के संयम के साधन वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इस भव्यात्मा के आर्त रौद्र ध्यान तो रंच भी नहीं रहे और धर्मध्यान के द्वारा यह मोक्षमार्ग में विजयशील हो रहा है, समाधि का बल प्राप्त कर लेता है। वहाँ शुक्लध्यान के प्रथम २ पायों में से प्रथम ध्यान में रहता हुआ नाना प्रकार के ऋद्धि विशेष से युक्त होता हुआ और उन ऋद्धि विशेष में रंच भी चित्त न देता हुआ मोह आदिक कर्मों का क्षय कर लेता है।

जीव अजीव आश्रव बन्ध सवर निर्जरा मोक्ष तत्त्व का निर्देश—जीव कैसे निर्वाण प्राप्त करे उसके निर्वाण आदिक लाभ में कैसे तत्त्वज्ञान की आवश्यकता है, जिस तत्त्वज्ञान के पूर्व क्या-क्या ज्ञान चाहिए, उन सब का वर्णन इस ग्रंथ में किया गया है। जब तक लोक व्यावहारिक बातों का का स्पष्ट परिचय न प्राप्त करले तब तक दिलचस्प होकर परमार्थ तत्त्व के जानने का उपाय करने को उत्साहित नहीं हो पाते। मुख्य दो तत्त्व हैं जीव और अजीव, और जब आत्मा के विषय में उन्नति की पद्धति से जीव और अजीव इन मौलिक दो विषयों में परिचय पाना है तो यहाँ अजीव के मायने कर्म हुआ। जीव एक स्वतन्त्र पदार्थ है। कार्माण वर्गणाएं जिसमें अनेक अनन्त परमाणु हैं, प्रत्येक परमाणु द्रव्य का स्वतन्त्र अस्तित्व है। परमाणुओं में पुद्गल में ऐसा ही स्वभाव है कि वे परस्पर बन्ध होकर एक स्कन्ध दशा में भी आ जाते हैं। सो अब यहाँ २ बातें सामने हुई जीव और कर्माणवर्गणाएं दोनों का अपने आप में परिणमन है, पर ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग है परस्पर कि जीव के अशुद्ध भावों का निमित्त पाकर कार्माणवर्गणाएं स्वयं कर्मरूप से परिणम जाती हैं और उन बद्धकर्मों के उदय का निमित्त पाकर जीव स्वयं विकाररूप परिणम जाता है। यह प्रकृति ऊनादि से चली आ रही है। इस प्रक्रिया को समाप्त करने में बड़ा आत्मपौरुष चाहिए। तब आत्मपौरुष का वर्णन संवर और निर्जरा तत्व के वर्णन में बताया गया है। चूंकि संवर निर्जरा का कारणभूत शुद्धभाव है। अशुभोपयोग पूर्वक नहीं होता, उससे पहले शुभभाव का होना अनिवारित है। इसी कारण शुद्धभाव होने से पूर्व होने वाले व्रत आदिक शुभभावों का इसमें वर्णन किया गया है जैसे कर्मबन्ध और विकार परस्पर निमित्त नैमित्तिक योग से फलते रहते हैं ऐसे ही शुद्धभाव और संवर निर्जरा इन दोनों में भी परस्पर निमित्त नैमित्तिक भाव है। जीव के शुद्ध भावों के अभ्युदय का सुयोग पाकर पूर्वबद्ध कार्माणवर्गणाएं अपनी कर्मरूप अवस्था को तजकर अकर्मरूप दशा में आती हैं और जैसे ही ये कार्माणवर्गणायें कर्मरूप दशा को तजकर अकर्म दशा में आ जाती हैं। सो इस स्थिति का सुयोग पाकर शुद्ध गुणों में विकास हो जाता है।

प्रभु के ज्ञान लक्ष्मी का विलास—कर्मों का क्षय और आत्मा के शुद्ध परिणाम का अभ्युदय इन दोनों में उत्पत्ति काल में परस्पर निमित्त नैमित्तिक योग है। हाँ एक बार शुद्ध गुण विकास हो जाने पर आगे अब निमित्त की आवश्यकता नहीं रहती। हाँ सामान्य कालद्रव्य निमित्त है। सो वह तो सभी पदार्थों के परिणमन का सामान्यतया निमित्त है। धर्मादिक अनादि सिद्ध द्रव्यों के परिणमन में भी कालद्रव्य का परिणमन निमित्त है, अतएव उस सामान्य निमित्त की चर्चा की नहीं जाती, क्योंकि वह तो सर्वत्र निमित्त है ही, पर जो कभी निमित्तरूप बन जाये, कभी न बने, कभी नष्ट हो जाये उस निमित्त की चर्चा की जाती है। यह जीव मोह का विनाश करके सर्वज्ञ की ज्ञान लक्ष्मी का अनुभव कर लेता है। लक्ष्मी नाम वास्तव में ज्ञान का ही है। आत्मा की लक्ष्मी ज्ञान है। लक्ष्मा का अर्थ है चिह्न। लक्षण लक्ष्म लक्ष्मी तीनों एक ही धातु से बने। एक ही अर्थ को उद्योतित करते हैं। तो आत्मा का लक्षण क्या है?

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान। उस ज्ञान का जो सम्पूर्ण विकास है उसको ज्ञानलक्ष्मी कहते हैं। तो प्रभु सर्वज्ञ देव परिपूर्ण ज्ञानलक्ष्मी से शोभायमान हैं। प्रभु का सर्वज्ञता का जिसे श्रद्धान है उसे कहीं अधीरता नहीं जगती। जो जो बात हुई है, जो घटनायें होगी, जो वर्तमान घटनाएं चल रही हैं तीन लोक तीन काल सम्बन्धी समस्त पदार्थ प्रभु के ज्ञान में ज्ञात हो रहे हैं। यह एक आत्मा का स्वभाव है कि ज्ञान लक्षण जब पूर्ण विकसित होता है तो समग्र पदार्थ ज्ञान में ज्ञेय होते ही हैं। हाँ जहाँ मोह न रहा, विकल्प न रहा वहाँ सर्व ज्ञेयवों को जानकर कोई तरंग नहीं उठती, विकल्प नहीं जागता। इसलिए जैसा कि हम लोग जाना करते हैं उस प्रकार का ज्ञान तो वहाँ नहीं चल रहा जिससे कि लौकिकजन शीघ्रता से उस सर्वज्ञता के स्वरूप को जान सके, पर ज्ञान सबका है, विकल्प तरंग रंच नहीं है। इसलिए समझिए कि वह एक सामान्य रूप से सब कुछ ज्ञात हो रहा है। ज्ञात सब हो रहा है। तब यह ज्ञानी पुरुष यह धीरता रखता है कि जो कुछ होगा वह सब ज्ञान में ज्ञात हो चुका है और वह होगा, ज्ञात हो चुका इस कारण न होगा। न भगवान ने स्वयं मर्जी से ऐसा जाना कि जैसा जाने वैसा होने लगे। याने वहाँ होने न होने का कुछ आधार न हो और ज्ञान में जाना गया इसलिए हो रहा यह बात रंच नहीं है, किंतु अपने कारणकलाप से जो घटना जिस प्रकार होगी वह उन कारण कलापों पूर्वक उस प्रकार चलेगी। बस ज्ञान स्वच्छ है इसलिए ज्ञान में सब ज्ञात हो गया है अर्थात सर्व पदार्थ मात्र विषयभूत हैं। तो उस सर्वज्ञ की ज्ञान लक्ष्मी में ऐसा बल है ऐसी स्वच्छता है कि जिसके प्रताप से ये प्रभु सहज अनन्त आनन्द का अनुभव करते रहते हैं।

सिद्ध सदृश अवस्था की उपादेयता – भव्यात्मा अपने बारे में ऐसी ही शुद्ध अवस्था को चाहता है। उस शुद्ध अवस्था से पूर्व संसार की इन विकार दशाओं में कुछ भी तत्त्व नहीं है। यह ही जीवों के लिए संकट है जो विकारभाव जग रहे। चाहे थोड़ा इष्ट समागम मिलकर कल्पित सुख की दशा बने या कल्पित इष्टका वियोग हाकर यह अपनेमें कष्टरूप दशा बनाये पर यह सब एक कल्पना से ही कर रहा है। बाहरी पदार्थों से इसमें कोई परिणति नहीं आ रही है इस कारण इन किन्हीं भी दशाओं में आनन्द नहीं है। आनन्द तो आत्मा के निज आनन्द में है। सो ऐसे आनन्द का पूर्वकाल में अनुभव किया, समाधि दशा में, जिसके फल से अब प्रभु के अनन्त आनन्द प्रकट हुआ है। उसी आनन्द के बल से शेष कर्मों का क्षय जब हो जाता है तो संसार का बन्धन सर्व समाप्त हो जाता है। फिर जैसे अग्नि को ईंधन न मिले तो उपादान रहित होकर अग्नि अर्थात जिस पदार्थ का आश्रय करके अग्नि बढ़ती रहती थी बहुत ईंधन न मिलने से अग्नि स्वयं शांत हो जाती है ऐसे ही बुरे परिणाम किये हुए भव इसको कष्टरूप अग्नि के लिए ईंधन बन रहे थे। अब उन समस्त भवों का वियोग हो गया। कर्मों का भी विनाश हो गया, तो कारणों का अभाव होने से अब आगे न इसकी शरार का संयोग होने का है और न कर्मों का संयोग होने का है। सो संसार के समस्त दुःखों का उल्लंघन कर देता है, विनाश कर देता है और अब इसको अनन्त निरूपम मोक्ष सुख प्राप्त होता है। किसी भी इन्द्रिय का जहाँ प्रयोग नहीं है। इन्द्रिय हैं ही नहीं। जहाँ मन के विचार का रंच प्रयोग नहीं है। मन सिद्ध में है ही नहीं, किसी भी प्रकार के रागद्वेष का उठाव जहाँ नहीं है, कर्मरहित होने से सिद्ध में विकार है ही नहीं। तो ऐसी स्थिति में जो आत्मीय आनन्द प्रकट होता है वह परम कल्याणरूप है।

निकट भव्य आत्मा की इन्द्रिय ज्ञान व इन्द्रियज सुख में अनास्था—कल्याणार्थी जनों को चाहिए कि इन्द्रियजन्य सुख और इन्द्रिय जन्य ज्ञान में आस्था न करके अतीन्द्रिय सुख और अतीन्द्रिय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञान के स्वरूप में उपोग देवें जिससे निर्विकल्प अवस्था प्राप्त हा और सदा के लिए संसार के सारे संकट टल जाएं। इन्द्रिय जन्य सुखों को जो हेय मान लेता है वही पुरुष मोक्ष मार्ग में गमन करने का अधिकारी है। इन्द्रियाँ भा मिटेंगी। ये विषय भी मिटेंगे। और उनमें सुख की कल्पना करने वाला यह परिणमन भी मिटेगा। कुछ भी तो नहीं रहना है। तो जहाँ सर्वत्र माया माया हीचल रही है। उससुख में उपादेय की कल्पना होना बहुत बड़ा पाप का उदय समझिये। इन्द्रिय जन्य ज्ञान भी हेय है। छुटपुट ज्ञान जो इन्द्रिय द्वारा प्राप्त होता है ऐसे तुच्छ ज्ञानों का आदर होना यह भी एक पाप का उदय है। कोई बड़ा धनी पुरुष जिसका किसी पर लाखों रुपये का कर्जा है और उसको बहुत-बहुत माँगने पर, बड़ा बड़ा दबाव डालने पर वह कहे कि भाई १००-५० रुपये लेकर हमारा सब कर्जा माफ कर दो, तो वह कहता है कि भाई हट ये सौ पचास रुपये भी नहीं चाहिये। जहाँ सब गये वहाँ समझो ये भी गये। चाहिये तो उसे सम्पूर्ण, नहीं तो तुच्छ में संतोष नहीं करता। ऐसे ही ज्ञानी पुरुष जिन्होंने जान लिया है कि मेरे में ज्ञान अनन्त है। उस अनन्त ज्ञान का आज आवरण है और ये कर्म हमारे इस ज्ञान गुण को ढ़क कर क्षयोपशम के अनुसार थोड़ा छुटपुट ज्ञान मानो दे रहे हैं तो यह भव्यात्मा इन छुटपुट ज्ञानों में संतोष नहीं करता। मुझे नहीं चाहिये ये ज्ञान, बल्कि ये छुटपुट ज्ञान हमारे दुःख के कारण बनते हैं। जो यहाँ थोड़ा ज्ञान चल रहा है उससे अच्छा तो यह होता कि इन बाह्य पदार्थों का ज्ञान जरा भी नहीं रहता। आत्मा का ज्ञान तो छुड़ाये भी नहीं छूटता। तो यह भव्यात्मा इन्द्रियजन्य सुखों में और इन्द्रिय जन्य ज्ञानों में रंच भी आस्था नहीं करता। इसकी दृष्टि अनन्त ज्ञान के निधान आत्मस्वभाव पर रहती है।

ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्व के निरखने से श्रेयोलाभ - यह भव्य आत्मा अपने में निरखता है कि मैं ज्ञानमात्र हूँ। अन्य किसी रूप नहीं हूँ। अनादि अनन्त ज्ञान स्वभाव मेरे में तन्मय है। मैं ज्ञानघन । हूँ अपने समस्त प्रदेशों में ज्ञान से ठोस भरा हूँ। है यह अमूर्त पर इसका स्वरूप ज्ञान ज्ञान ही है। ज्ञानमय है यह आत्मा और इसी ज्ञानमात्र ज्ञानघन के अनुभव के प्रसाद से यह भव्यात्मा अपने को आनन्दमय अनुभव करता है। मेरे में कुछ कष्ट नहीं, क्यों व्यर्थ अधीर बनूँ। मेरा सर्वस्व मेरा आत्मस्वरूप है। ऐसे स्वभाव की भावना के बल से यह भव्यात्मा वीतरागता की ओर बढ़ता है। परम वीतराग हो जाता है। अरहन्त हो जाता है। और अरहन्त होने पर आयुकर्म के क्षय होते ही तत्काल शेष तीन अघातिया कर्म से भी निवृत्त हो जाता है और सदा के लिए यह निर्वाण सुख को प्राप्त करता है। इस प्रकार इस ग्रंथ में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के उपायों के स्पष्टीकरण से भव्यात्मा को यह प्रेरणा दी गई है कि हे भव्यजनो ! अब मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र को तजकर अपने स्वभाव के श्रद्धान ज्ञान आचरण में आओ और सदा के लिए संसार के समस्त संकटों से छुटकारा पाओ।

इति मोक्ष शास्त्र प्रवचन, २२, २३, २४वाँ भाग समाप्त।

Version 1